# बाल विकास की दिशाएँ

सुबुद्धि गोस्वामी

१५५.४
सुबु/बा

# बाल विकास की दिशाएँ

सुबुद्धि गोस्वामी

श्याम प्रकाशन, जयपुर

ब
हुआ
जैसा
दिशा
समाज
है कि
और र
तथा अ

य
भागम
बहुत-
बच्चों
सोचा
का बा
में था
चाहिए
कैसा
उसमें
कैसे ह
की अ
भीख,
कैसे ब
बारे में
चाहिए

प्र
से सम्
हैं, जो
व्यावहा

© सर्वाधिकार सुरक्षित


| | | |
|---|---|---|
| प्रकाशक | : | **श्याम प्रकाशन**<br>फिल्म कॉलोनी, चौड़ा रास्ता,<br>जयपुर—302 003 |
| मूल्य | : | एक सौ पचास रुपये |
| संस्करण | : | प्रथम, 1997 |
| शब्द-संयोजक | : | पंचशील कम्प्यूटर्स, जयपुर |
| मुद्रक | : | शीतल प्रिन्टर्स, जयपुर |

BAL VIKAS KI DISHAYEN

Subuddhi Goswami

Price

Rs. : 150

# आमुख

बच्चे देश के भावी कर्णधार होते हैं। उनका पालन-पोषण तथा विकास जितना अच्छा होगा, देश की नींव उतनी ही मजबूत होगी। बाल-विकास के सम्बन्ध में सोचना तथा उनकी बहुमुखी उन्नति के प्रयास करना प्रत्येक सरकार, समाज व नागरिक की जिम्मेदारी है। किन्तु खेद का विषय है कि हमारे देश के बहुसंख्यक बालकों के बारे में आज कुछ भी नहीं सोचा जा रहा। बड़े-छोटे शहरों के पिछड़े इलाकों तथा गन्दी बस्तियों में चले जाइये, बच्चों को वहाँ कीड़ों-मकोड़ों की भाँति जीवन-यापन करते हुए देखा जा सकता है।

बच्चों की इस अवस्था के लिए निश्चय ही हमारे देश की बेतहाशा बढ़ती हुई जनसंख्या जिम्मेदार है। सरकार तथा समाज दोनों ही के साधन सीमित हैं। ऐसे में न तो बच्चों के खान-पान तथा शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो पा रही है और न ही उनकी परवरिश ठीक ढंग से हो पा रही है। आर्थिक असमानता इतनी बढ़ी हुई है कि कुछ बच्चे तो अत्यन्त साधन-सम्पन्न हैं, जिन्हें बेहद खर्चीली व्यवस्था वाले पाश्चात्य ढंग के स्कूलों में पढ़ाया जा रहा है तथा कुछ बच्चों को साधारण सरकारी स्कूलों में पढ़ने की भी सुविधा उपलब्ध नहीं है। वस्तुतः इसका मुख्य कारण बच्चों के विकास के बारे में हमारा अव्यावहारिक दृष्टिकोण है। किसी भी काम को हम सफलतापूर्वक तभी सम्पन्न कर सकते हैं जब उसके बारे में हमारी सोच सही हो। हमेशा उद्देश्य निश्चित करने के बाद ही रास्ता तय किया जाता है। पहले हम यह सोचें और संकल्प करें कि बच्चों की देखभाल और विकास की हमारी जिम्मेदारी अन्य सभी कामों से बढ़कर है, इसे हमें प्राथमिकता के आधार पर निबटाना है, तभी हम इस दिशा में आगे कुछ कर सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में बच्चों के बारे में ऐसी ही सोच विकसित करने का प्रयास किया है। इसमें शैशवकाल से लेकर किशोर होने तक के अनेक पहलुओं पर गहरी सोच के साथ कुछ विचार रखने की कोशिश की गई है।

अभिभावक बाल मनोविज्ञान विशेषज्ञ और शिक्षक इस पुस्तक को पढ़कर बाल विकास की नई दिशाएँ खोजने का प्रयास करेंगे तो मेरा प्रयास सफल होगा।

— सुबुद्धि गोस्वामी

# विषय-सूची

# बच्चों को कैसा वातावरण चाहिए?

किसी भी बच्चे में गुणों–अवगुणों का समावेश उसके पारिवारिक वातावरण के अनुसार होता है। बच्चा जैसा वातावरण परिवार में देखेगा उसका प्रभाव वैसा ही उसके मन पर पड़ेगा। अतः घर–परिवार के शिशुओं एवं बच्चों को स्नेह, सहानुभूति, विश्वास, शिष्टता, सद्‌भाव और आदर आदि गुणों से सम्पन्न करने की आवश्यकता होती है।

जिस घर में शिशु अपने अभिभावकों व माता–पिता को अकारण झगड़ते, झल्लाते और कलह करते देखेगा, उसमें परिजनों के प्रति आदर व आस्था कैसे जाग सकेगी? घृणा, सन्देह और अविश्वास का वातावरण शिशुओं और बच्चों के स्वाभाविक संवेगात्मक विकास में बाधक होता है। ऐसी बातों का कुप्रभाव उनके मन–मस्तिष्क का विकास रोक देता है और उनकी गतिविधियाँ समाज–विरोधी होने लगती हैं।

**स्नेहिल व्यवहार की आवश्यकता**—सुबह उठने से रात को सोने तक बच्चों के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करके हम उनके अन्दर आत्मविश्वास, आदर तथा दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करने की प्रेरणा विकसित कर सकते हैं। बच्चों की बातों में, उनके खेलकूद तथा मनोरंजन की गतिविधियों में रुचि लेना, बाल–सुलभ व्यवहार करना, उनके प्रति स्नेह दिखाना आदि बातों का बड़ा महत्त्व है। यथासाध्य और यथासमय—'राजा बेटा', 'मुन्ना बेटा', 'मेरी अच्छी मुन्नी', अथवा 'प्यारी–प्यारी बिटिया' कहें। ऐसे स्नेहिल व्यवहार से बच्चे अपनेपन में बँधते हैं।

आप किसी भी दिन 'बच्चों का दिन' समझ कर पूरे समय तक उनका प्रेम पूर्वक ध्यान रख कर एक प्रयोग कर सकती हैं। आप देखेंगी कि बच्चा आपके साथ अत्यधिक दिलचस्पी ले रहा है। किन्तु आज के जीवन का एक दुर्भाग्यपूर्ण सच यह है कि हम अपने बच्चों के साथ किसी एक दिन भी सम्पूर्ण रूप से स्नेहमय व्यवहार नहीं कर पाते हैं। अधिकांश घरों में शिशुओं एवं बच्चों को हर समय झिड़क, डाँट–

फटकार और प्रताड़ना मिलती रहती है, जो उनके दिमाग में धीरे-धीरे बुरा प्रभाव डालती रहती है।

**बच्चों को माता-पिता की सहानुभूति चाहिए**—यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बच्चों को हर समय माता-पिता की सहानुभूति चाहिए। यदि उसके हाथ से काँच का गिलास टूट जाए, कोई तरल पदार्थ दूध, तेल, घी गिर जाए अथवा उसको कोई चोट लग जाए तो वस्तुतः उसे माता-पिता की सहानुभूति की आवश्यकता होती है न कि डाँट-फटकार की। सहानुभूति न पाने की स्थिति में बच्चे के कोमल हृदय पर बड़ी चोट पहुँचती है।

एक बार मुझे एक परिचित परिवार में जाने का अवसर मिला। मेजबान महिला ने अपनी दस साल की बच्ची से पानी लाने को कहा। ड्राइंग रूम में प्रवेश करते ही बच्ची का पाँव फर्श पर बिछी दरी से अटक गया। परिणामस्वरूप ट्रे में रखी हुई चार काँच कीं गिलासें नीचे गिर कर टूट गईं। उनके टुकड़े इधर-उधर बिखर गए। महिला ने लड़की की ओर देखा भर था कि वह थर-थर काँपने लगी। मैंने पहली बार किसी बच्चे को यों थर-थर काँपते देखा था। भय और आतंक के भाव उसके चेहरे पर बुरी तरह से छा गए थे। मैंने कहा—'कोई बात नहीं बेटी। काँच तो टूटने वाली चीज होती है। तुम डरो नहीं। मम्मी तुम्हें कुछ नहीं कहेंगीं।' लेकिन फिर भी उसका काँपना बन्द न हुआ। अतः मैं मैंने उठ कर उसे अपनी गोद में चिपका लिया। उसको सामान्य होने में बहुत समय लगा। जाहिर था कि उसे अनजाने में हुए ऐसे नुकसान पर कड़ी डाँट पड़ती रही थी। इसी कारण वह भयभीत हो गई।

बच्चों के प्रति ऐसा व्यवहार उचित नहीं। क्योंकि अतिशय क्रोध या डाँट-डपट से किसी भी क्षण उसका मानसिक और शारीरिक सन्तुलन बिगड़ सकता है। वह मानसिक रोग का शिकार हो सकता है।

**परस्पर दुर्व्यवहार का प्रभाव**—याद रखिए, बच्चे गुणों की तुलना में अवगुणों को जल्दी ग्रहण करते हैं। अतः उन्हें क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, अविश्वास से सदैव बचाते रहने की कोशिश करनी चाहिए। बात-बात पर क्रोध करके उत्तेजक शब्दों का प्रयोग चाहे आप बच्चों के लिए नहीं कर रहे हों; परस्पर पति-पत्नी ही विवाद में उलझे हों, किन्तु बच्चों पर उसका प्रभाव बुरा पड़ता है। माता-पिता के परस्पर दुर्व्यवहार का सीधा प्रभाव बच्चों की प्रवृत्ति पर पड़ता है, उनके आचार-व्यवहार

पर पड़ता है। यदि लगातार उन्हें ऐसी बातें देखने को मिलती हैं तो मानसिक विकृति के साथ ही वे अपराधी प्रवृत्तियों में भी पड़ जाते हैं। अत: यदि आप सुखी परिवार की कल्पना करती हैं तो परस्पर शिष्ट एवं सद्व्यवहार कीजिए। घृणा, क्रोध और अविश्वास को अपने घर में प्रवेश मत करने दीजिए।

**ईर्ष्या तथा व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा से बचाएँ**—घर में एक से अधिक बच्चे होने पर प्राय: बच्चों में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो जाता है। वे बात-बात में एक-दूसरे को दी जाने वाली सुविधा के बारे में ईर्ष्या करके रूठने लगते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों को प्यार से समझाते रहना चाहिए ताकि यह प्रवृत्ति आगे न बढ़े। स्वयं माता-पिता को भी ईर्ष्या और द्वेष से कोसों दूर रखना चाहिए।

दूसरों की देखा-देखी या व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा का भी बच्चों के मस्तिष्क पर विपरीत असर होता है। उदाहरण के लिए यदि पत्नी पति से कहती है, "आप तो मेरा जरा भी ख्याल नहीं रखते। मिसेज शर्मा के पति तो उसे हर माह दो कीमती साड़ियाँ दिलाते हैं।" अथवा पति पत्नी से कहता है—"तुम बड़ी फूहड़ हो। अपनी पड़ोसिन मिसेज गुप्ता को देखो। वह कितनी साफ-सुथरी रहती है, अपने घर को कैसा सजा-सँवार कर रखती है।"

ऐसी व्यर्थ की तुलना या प्रतिस्पर्धा से गृहस्थी के बिगड़ने व डाँवाँडोल होने की भारी सम्भावना रहती है। खुद से अधिक पड़ोसियों का ख्याल रखने वाले दम्पत्ति यह भूल जाते हैं कि उनकी बातों का उनके बच्चों पर कितना घातक प्रभाव पड़ रहा है।

**परस्पर अविश्वास का वातावरण खत्म करें**—पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों में यदि तनाव और अविश्वास लगातार बना रहता है तो अनेक बार तलाक अथवा कानूनी सम्बन्ध-विच्छेद की स्थिति पैदा हो जाती है। बच्चों के लिए ऐसी स्थिति भारी ठेस पहुँचाने वाली होती है, क्योंकि स्वभावत: वे माता-पिता में से किसी एक का भी स्थायी वियोग सहन नहीं कर सकते।

माता-पिता में से किसी एक की मृत्यु हो जाने का वियोग तलाक से सर्वथा भिन्न होता है। समयान्तर से वह उसे एक स्वाभाविक प्रक्रिया मान कर स्वीकार कर लेता है। किन्तु परस्पर अविश्वास और कलह के कारण हुए तलाक का प्रभाव बच्चों को मानसिक आघात पहुँचाने वाला तथा उनका विकास रोकने वाला सिद्ध होता है। ऐसे में अकेला हुआ शिशु अथवा बालक शीघ्र ही असामाजिक गतिविधियों में संलग्न

हो सकता है। अतः पति-पत्नी के सम्बन्ध परस्पर मधुर, प्रेमपूर्ण और विश्वास बढ़ाने वाले होने चाहिए।

जैसा कि आरम्भ में कहा गया है, बच्चों में पारिवारिक वातावरण के अनुसार ही गुणों का संचार होता है। अतः इस तथ्य को हमें जीवन भर नहीं भूलना चाहिए। बच्चे किसी भी उम्र के क्यों न हों, अपने अभिभावकों को वे अपना संरक्षक, आदर्श पुरुष तथा मार्ग दर्शक मानते हैं। छोटी उम्र में वे घर के वातावरण के प्रति विशेष सचेष्ट रहते हैं और उसे अपनाने लगते हैं, किन्तु बड़े होने पर घर के वातावरण को देखते हैं तो उनके मन को भारी ठेस पहुँचती है। अतः हमारा यही प्रयास रहना चाहिए कि शैशवावस्था से ही उन्हें शान्त, सौम्य और प्यार भरा वातावरण मिले।

माता-पिता के प्यार की छाया में पलने वाले शिशु की आशा व आकांक्षाएँ सदा सन्तुष्ट होती हैं, जिनसे उसका मानसिक विकास स्वाभाविक रूप से होता है। बच्चे देश के होनहार नागरिक बनते हैं। अतः पारिवारिक बातों में राई का पहाड़ बनाने की प्रवृत्ति को अपनाया जाना ठीक नहीं है। पारिवारिक शान्ति बच्चों में अनेक अच्छे और सुहाने गुणों का संचार करती है।

❐

# कौतुक से भरी सहज क्रियाएँ

माँ के गर्भ से बाहर आने के पश्चात् शिशु का नैसर्गिक विकास आरम्भ होता है। नवजात शिशु कुछ सहज क्रियाएँ करता है, जिसे देखकर हम सब प्रसन्न होते हैं तथा उसके निरन्तर पालन–पोषण के लिए प्रेरित होते हैं। नवजात शिशु की ये क्रियाएँ कुछ तो आजीवन चलती हैं और कुछ थोड़े–मोड़े समय अर्थात् तीन–चार माह की अवधि में ही बदलती जाती हैं। अँगूठा चूसना, दूध पीना, गटकना, निपल के गाल पर छूने भर से उसकी ओर लपकना, तेज आवाज होने पर चौंकना, कसकर मुट्ठी बाँधना तथा हाथ–पाँव पटकना आदि शिशु की आरम्भिक सहज क्रियाएँ हैं।

एक माह की उम्र हो जाने पर सामान्यत: शिशु अपना हाथ या मुट्ठी मुँह तक लाकर उसे चूसना आरम्भ कर देता है। यद्यपि इस अवधि में उसका सिर ढुलमुलाता रहता है तथापि तकियों के सहारे उसे बिठाया जाना सम्भव हो जाता है।

छह–सात सप्ताह का हो जाने पर शिशु मुस्कुराता है, किलकारियाँ भरता है, अस्फुट आवाजें भी करता है। यदि उसे पेट के बल लिटा दिया जाए, तो अपने सिर को साध भी लेता है।

दूसरे और तीसरे माह तक वह अपने पाँव सीधे फ़ैलाने का प्रयास करता है। झुनझुने अथवा अन्य खिलौने की आवाज सुनकर अपनी नजरों को इधर–उधर घुमाता है और सिर भी घुमाकर चीजों को जिज्ञासा के साथ देखने लगता है।

छह माह की आयु होने पर हम उसे सहारा देकर बैठाना चाहें तो वह बैठ भी सकता है। पेट के बल लि़टा दिया जाए तो स्वयं ही पलटकर पीठ के बल लेट जाता है। इसी समय वह उत्तेजना या आनन्द की प्रतिक्रिया भी करता है। कभी सहारा मिल जाए तो समतल जमीन पर पेट टिकाकर खड़ा भी हो सकता है। इस आयु में बच्चों को गेरगड्डू या ऐसे ही खिलौनों के सहारे चलाने का प्रयास भी किया जाता है। किसी चीज के सहारे ही सही, हम उसे स्वयं पैर उठाकर चलता देखकर बेहद खुश होते हैं।

इन्हीं दिनों आपका शिशु हथेली या पंजे से किसी चीज को पकड़ने का प्रयास करता है। उसे बिस्किट या और कोई हल्की वस्तु खाने में आनन्द आता है। मेज पर बैठकर वह अपने हाथ के खिलौने को पीट-पीटकर खुश होता है। 'बा', 'दा', 'पा', 'मा' आदि अक्षरों से बोलना शुरू करता है। वास्तव में यह उसके भाषा ज्ञान की पहली सीढ़ी है।

नौ माह का होते-होते शिशु अँगूठे तथा अँगुलियों की सहायता से चीजों को उठाने, सहेजने तथा कसकर पकड़ने में रुचि लेता है। आप उससे कोई चीज माँगते हैं, तो वह हाथ तो उठाता है, मगर देता नहीं। किसी ऊँची जगह से खिलौना गिरा देने पर उसे ढूँढता है और यह भी चाहता है कि आप उसे ढूँढकर पकड़ा दें।

एक साल की उम्र तक आपका शिशु अपना नाम पहचानने लगता है और नाम से आवाज देने पर आपकी ओर देखता है। इन दिनों वह हर चीज से खेलने तथा उसे मुँह में भरने का प्रयास करता है। उसे 'ना', 'टाटा' 'बाय-बाय' आदि शब्दों पर प्रतिक्रिया करना आ जाता है। अब तक वह चलना सीखकर अपनी अनेक हरकतों से अपने अभिभावकों को रिझाना शुरू कर देता है। हम उसके साथ चलने का खेल खेलते हैं, उसे स्वयं चीज उठाकर लाने को कहते हैं।

गीत, शिशुगीत, कविताएँ, कहानियाँ सुनना इन दिनों उसे बहुत अच्छा लगता है। आपके सुनाने पर वह उन्हें बड़े ध्यान और चाव से सुनता है। आपके नन्हें राजा की हर हरकत कौतुक से भरी होगी, जो आपको आनन्द से सराबोर कर देगी।

स्मरण रखिए, हर शिशु स्वयं में एक अनोखा प्राणी होता है, जिसे आप बरबस ही प्यार करने लगते हैं। किन्तु क्या आप जानते हैं कि प्रत्येक बच्चा एक ही समय में एक-सी क्रियाएँ नहीं करता। ऊपर बताई गईं सहज क्रियाएँ एक सामान्य रूप से विकसित होने वाले शिशु की क्रियाएँ हैं। लेकिन क्योंकि प्रत्येक शिशु का मानसिक तथा शारीरिक विकास एक-जैसा नहीं होता, अतः यदि कोई शिशु ऊपर बताये गए समय के अनुसार निश्चित क्रियाएँ नहीं करता, तो उसे अस्वस्थ या असामान्य शिशु न समझें। उसे तसल्ली के साथ शिशु-रोग-विशेषज्ञ को दिखाएँ और उसके बताए हुए मार्ग पर चलें। कभी-कभी कुछ शिशु बोलने और चलने में, भी असामान्य देरी कर देते हैं, किन्तु यह भयभीत होने की बात नहीं है। धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो जाता है।

आपने देखा होगा अनेक माता–पिता क्रोधी स्वभाव के होते हैं। उनका सामान्य व्यवहार भी लोगों के प्रति अच्छा नहीं होता, किन्तु जब वे अपने शिशु को देखते हैं तो स्वाभाविक रूप से नरम पड़कर उसे गोद में उठा लेते हैं तथा प्यार करने लगते हैं। उनके स्वभाव में अचानक एक परिवर्तन आ जाता है। वस्तुतः इस परिवर्तन की जननी भी शिशुओं की सहज लुभाने वाली क्रियाएँ होती हैं, जो हमारे मन की भावनाओं को ही बदल देती हैं।

आपके शिशु की कौतुक भरी क्रियाएँ आपके लिए बहुत बड़ा आकर्षण हैं। इस आकर्षण में एक विचित्र आनन्द की अनुभूति छिपी है। यही अनुभूति शिशु के निरन्तर पोषण की प्रेरक है।

❑

# आपके लाडले का आहार

अधिकांश शिशु–विशेषज्ञों की सलाह है कि नवजात शिशुओं को पहले छह महीने केवल माँ का दूध या उससे मिलते–जुलते फार्मूले से बना डिब्बे का दूध देना चाहिये।इसके तीन कारण विशेषज्ञों ने बातये हैं।पहला वह कि जब बच्चों को अनाज आदि देना जल्दी शुरू कर दिया जाता है तो उनको भोजन में आवश्यकता से अधिक कैलोरीज मिलने लगती हैं, जिससे वे मोटे हो जाते हैं। दूसरा कारण यह है कि ऐसे बच्चों के शरीर में किसी एक प्रकार के खाद्य–पदार्थ से एलर्जी उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है। तीसरा कारण यह है कि नवजात शिशु को पहले छह माह में माँ के दूध से पर्याप्त पोषक तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं और उसे किसी भोजन की आवश्यकता नहीं होती।

छह से आठ माह की अवस्था में बच्चों को फलों का रस आदि तरल खाद्य–पदार्थ दिये जाने चाहिये। इनसे अन्य सभी आवश्यक पोषक तत्त्व बच्चे को मिल जायेंगे। विटामिन और लौह तत्त्व की आमतौर पर इस उम्र में बच्चों को उतनी आवश्यकता नहीं होती।

स्कूल जाने वाले बच्चों के भोजन में विविधता के साथ–साथ पौष्टिकता भी बनी रहे, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए। भोजन के समय के अलावा मुँह चलाते रहने की आदत बहुत बुरी होती है। यह आदत न पड़ने दें। स्कूली बच्चों के भोजन में चिकनाई, चीनी और मसाले कम मात्रा में प्रयोग करें।

छोटे बच्चे खाना खाने में कभी–कभी बहुत परेशान करते हैं। वे गिनी–चुनी वस्तुएँ ही खाते हैं। कभी–कभी खाना छोड़ भी देते हैं। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होने लगाता है, स्वाभाविक तौर से वह कम खाने लगता है। कारण यह है कि नवजात शिशु की अपेक्षा डेढ़–दो साल के बच्चे की बढ़ने की गति कम होने लगती है क्योंकि अब उसे पहले की अपेक्षा कैलोरीज की कम जरूरत होती है। बच्चा इस अवस्था में पहले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र हो जाता है। उसका ध्यान दूसरी चीजों की ओर

अधिक जाता है। ऐसी अवस्था में आप उसको पकड़ कर व बिठाकर भी खिला नहीं सकतीं। इस समय में आप यह भी पायेंगी कि आपके बच्चे का वजन कुछ घटने भी लगा है। मगर यह बिल्कुल स्वाभाविक है, इससे भयभीत न हों।

यदि बच्चा हरी-सब्जियाँ खाने से इन्कार करने लगे अथवा भोजन में उसकी रुचि कम हो जाए तब भी इन पदार्थों को परोसना बिल्कुल बन्द न करें। उसे हर प्रकार का भोजन परोसती ही रहें। बच्चों की पसन्दगी और नापसन्दगी जल्दी-जल्दी बदलती रहती है। जो पदार्थ उसको आज नापसन्द हो कल उसे दूसरी तरह से बनाकर दीजिए, वह बड़े चाव से खाएगा।

बच्चों की रुचि-अरुचि के कारण एक श्रेणी के खाने को यदि आप बन्द कर रही हों तो उससे मिलने वाले पौष्टिक पदार्थों की कमी को दूसरी श्रेणी के खाद्य पदार्थों से मिलने वाले तत्त्वों से पूरा किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कैल्शियम को ही लीजिए। कैल्शियम हड्डी और दाँतों को मजबूत बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अगर किसी कारणवश आपके बच्चे को दूध अच्छा न लग रहा हो तो उसे पनीर या दही दें या उन चीजों को खाने में इस्तेमाल करें, जिससे कैल्शियम की कमी पूरी हो जाए। इसका पूरा-पूरा ध्यान रखें।

स्कूल जाने वाले बच्चों को अच्छा पौष्टिक भोजन मिलना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इस काल में संजोई हुई शक्ति किशोरावस्था तक काम आती है। इस अवस्था के बच्चों को पौष्टिक आहार न मिलने का सबसे बड़ा कारण होता है उनकी बढ़ती हुई आजादी। आप चाहे उसे कितना ही स्वास्थ्यवर्धक खाना रखकर भेजें, यह जरूरी नहीं कि बच्चा उसे खा ही ले। इस उम्र में बच्चों को जेब-खर्च भी मिलने लगता है और इस पैसे से वे ज्यादातर चाट-मिठाई खरीद कर खा लेते हैं। अतः इस सम्बन्ध में भी उससे पूछताछ करती रहें और उसकी इस आदत को खत्म करें।

बच्चे का सुबह का नाश्ता भी सन्तुलित होना चाहिए। जो बच्चे सुबह स्कूल जाने से पहले सन्तुलित नाश्ता नहीं लेते, वे स्कूल पहुँच कर पढ़ाई में मन नहीं लगा पाते और ढीले-ढाले रहते हैं। साथ ही स्कूल में असमय चटपटी और गरिष्ठ चीजें खरीदते और खाते हैं, जो बुरा है।

आहार विशेषज्ञों का कहना है कि माँ को बच्चों के लिए कम कैलोरीज वाले विविध प्रकार के नाश्ते घर में ही तैयार रखने चाहिए। यदि बच्चे को यह विश्वास

होगा कि स्कूल से घर पहुँच कर उसे मनपसन्द स्वादिष्ट खाने को अवश्य मिलेगा तो स्कूल में या रास्ते में वह बेकार की चीज नहीं खरीदेगा। शिशुओं एवं बच्चों के भोजन अथवा आहार के प्रति प्रत्येक गृहिणी को सतर्क रहना चाहिए। युवावस्था में भी इस सतर्कता के अच्छे परिणाम होते हैं।

## कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण बातें

बच्चों को अपने लिए उपयोगी भोजन की विशेष जानकारी नहीं होती। अभिभावक उन्हें जिस तरह का भोजन खिला देते हैं, सामान्यत: उसे खाकर वे सन्तुष्ट हो जाते हैं। किन्तु चाहे जैसा भोजन खिला देने से उनके शरीर तथा बुद्धि का विकास रुक सकता है। अत: बच्चों के समुचित विकास के लिए आवश्यक है कि उन्हें पौष्टिक तत्त्वों से भरपूर भोजन दिया जाए। इस सम्बन्ध में अग्रांकित बिन्दुओं पर ध्यान देकर हम उनके साथ न्याय कर सकते हैं :

❖ बच्चों के समुचित विकास के लिए प्रोटीन एक जरूरी भोजन तत्त्व है, जो उन्हें दालों, मटर, अण्डे की सफेदी, बादाम तथा मछली आदि से प्राप्त होता है। अत: उनके भोजन में किसी-न-किसी रूप में उक्त खाद्यों का समावेश करने की चेष्टा करें। इससे उन्हें लाभ होगा।

❖ दूध में अनेक गुण पाए जाते हैं। बच्चों के शरीर में वह लवण और खनिज तत्त्वों की कमी को पूरा करता है। अत: उन्हें दूध समुचित मात्रा में पिलाएँ।

❖ घी, मक्खन, तिलहन, बादाम और मलाई एवं तेल आदि पदार्थों का सेवन बच्चों के लिए बहुत उपयोगी होता है। इससे वे शरीर के लिए आवश्यक चिकनाई की मात्रा प्राप्त करते हैं। उनके भोजन में चिकनाई-युक्त इन पदार्थों को अवश्य शामिल कीजिए।

❖ स्टार्च अथवा शर्करा या मीठा भी बच्चों के शरीर की बढ़ोतरी और व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। प्रमुख अन्न, गेहूँ, चावल, बाजरा तथा आलू व शकरकंद आदि सब्जियों से बच्चों को 'स्टार्च' प्राप्त होता है। इसके लिए उन्हें चीनी व गुड़ वांछित मात्रा में खिलाते रहना चाहिए।

उक्त पोषक तत्त्वों के अलावा बच्चों के भोजन में हरी सब्जियों और फलों को भी यथासाध्य पर्याप्त मात्रा में शामिल किया जाना चाहिए। साथ ही उनके शरीर

को पानी की पर्याप्त मात्रा मिलनी चाहिए। जल तथा फल-सब्जियाँ मिलकर बच्चों के शरीर से अशुद्धियों को दूर करेंगी। भोजन के लिए आवश्यक विटामिन ए., बी., सी. तथा डी. भी बच्चों को किसी-न-किसी रूप में प्राप्त होना जरूरी है। इनमें से किसी भी विटामिन की कमी नहीं होनी चाहिए।

आहार के सम्बन्ध में जो एक अन्य सावधानी बरतनी चाहिए, वह यह है कि बच्चे स्कूल में जो 'टिफिन' ले जाते हैं, उसमें अनेक बार अपने साथियों से साझा कर लेते हैं अथवा खाना बदल लेते हैं। यह उचित नहीं है। उन्हें ऐसा न करने की सलाह दें, क्योंकि हो सकता है आप अपने बच्चे को खान-पान की किसी विशेष योजना के तहत कुछ खास भोजन दे रहे हैं तो उक्त परिस्थिति में योजना में व्यवधान आ जाएगा। अतः इसका ध्यान रखें।

बच्चों के भोजन की पौष्टिकता कायम रखने के लिए उक्त बातों को ध्यान में रखें। आपके बच्चे सदा स्वस्थ, हँसमुख और सबके प्रिय बने रहेंगे।

❏

# बच्चों के लिए जरूरी टीके

स्वस्थ बालक किसी भी देश के उज्ज्वल भविष्य के प्रतीक होते हैं। उनके स्वास्थ्य का ध्यान हमें हर कीमत पर रखना चाहिए। ऐसा देखा गया है कि बच्चा जब अस्पताल में पैदा होता है तो वहाँ कुछ दिनों डॉक्टर की पूरी निगरानी में रहता है। उसके बाद माँ और बच्चे को अस्पताल से छुट्टी मिल जाती है। वहाँ से विदा होते समय हर माता-पिता को बच्चे की स्वास्थ्य सम्बन्धी आगे की जिम्मेदारी समझा दी जाती है, किन्तु दुर्भाग्य से अधिकांश माता-पिता इस जिम्मेदारी का पूर्ण रूप से पालन नहीं कर पाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तो ऐसी जिम्मेदारी का सर्वथा अभाव देखा जाता है। इन जिम्मेदारियों में सबसे महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है—टीके लगवाना। यदि माता-पिता अपने बच्चे को सही समय पर कुछ जरूरी टीके लगवा लें, तो वे अपने बच्चों को अपाहिज होने से और कभी-कभी मृत्यु से भी बचा सकते हैं। बच्चों को स्वस्थ जीवन प्रदान करके हम समाज और देश की प्रगति में योगदान दे सकते हैं।

## टीके क्या होते हैं?

टीके या 'वेक्सीन' एक ऐसा सम्पाक (दवा) होता है जिसमें रोग पैदा करने वाले कीटाणु (जिन्दा या मरे रूप में) या उनके द्वारा पैदा किया हुआ जहर निर्हित होता है, जो बच्चे के शरीर में पहुँचकर वहाँ एक 'हारमोन रेस्पांस' (प्रतिरक्षक प्रतिक्रिया) पैदा करता है और शरीर में बीमारी फैलने से रोकता है।

एक नवजात शिशु को छः बीमारियों के टीके थोड़े-थोड़े अन्तर से लगने चाहिएँ। ये बीमारियाँ क्या हैं, इनके लक्षण और उपचार क्या है इसकी सामान्य जानकारी यहाँ दी जा रही है :

## गलघोंटू या डिप्थीरिया

इस बीमारी में बच्चा रोगी-सा दिखने लगता है और ठीक से खाना नहीं खाता। उसके गले में सूजन आ जाती है और एक सफेद झिल्ली गले में बन जाती है। इसके बढ़ने पर बच्चा साँस नहीं ले पाता और साँस रुकने से बच्चे की मृत्यु तक हो जाती है।

**उपचार :** इस रोग से बचाने के लिये बच्चे की पैदाइश से तीन महीने के अन्दर एक-एक महीने के अन्तर से 'ट्रिपल एन्टीजन' (डी.पी.टी.) के तीन टीके लगवाने जरूरी हैं।

## काली खाँसी

इस बीमारी में बच्चा लगातार खाँसता है। खाँसी के बाद जोर की सीटी जैसी आवाज होती है। उल्टी भी होती है। कभी-कभी खाँसते-खाँसते आँखें बाहर निकल आती हैं। बच्चा बेहद कमजोर हो जाता है। उसे निमोनिया हो सकता है, जिससे मृत्यु भी हो सकती है।

**उपचार :** बच्चे के जन्म के तीन से नौ माह के बीच ट्रिपल एन्टीजन (डी.पी.टी.) के तीन टीके एक-एक माह के अन्तर से लगवायें।

## तपेदिक या टी.बी.

इस रोग में बच्चा कमजोर हो जाता है। बच्चे को कूबड़ निकल सकता है। बच्चे के दिमाग पर असर पड़ सकता है। रोग जब तेजी पकड़ लेता है तो बच्चा मर भी सकता है।

**लक्षण :** बच्चा थका-थका रहता है और उसका वजन कम हो जाता है। बच्चा खाँसता रहता है। उसे सिर दर्द तथा बुखार रहता है।

**उपचार :** बच्चे को तीन से नौ माह के बीच बी.सी.जी. का टीका अवश्य लगवा लेना चाहिए।

## टिटेनस या धनुर्वात

इस बीमारी में बच्चे का मुँह ठीक से खुल नहीं पाता और वह खा भी नहीं पाता है। उसका मुँह जकड़ जाता है और शरीर कमान की तरह अकड़ जाता है। बच्चे को रह-रहकर दौरे पड़ते हैं। परिणामतः ज्यादातर बच्चों की मृत्यु हो जाती है।

**उपचार :** पैदाइश से, तीन से नौ माह के बीच बच्चे को डी.पी.टी. के तीन टीके एक महीने के अन्तर से लगवायें।

## पोलियो

इस रोग में बच्चे को बुखार आता है। सिर और पाँव में दर्द रहता है। बच्चे के हाथ, पैर या किसी अन्य हिस्से में लकवा मार सकता है।

**उपचार :** पैदाइश से, 3 से 9 महीने के बीच में एक या दो महीने के अन्तर से 5 खुराकें मुँह के द्वारा पिलायी जाएँ। यह दवा अस्पतालों में मुफ्त दी जाती है।

## खसरा ( मीजल्स )

शुरू में बच्चे को बुखार, जुकाम खाँसी होती है। आँखे लाल हो जाती हैं और पानी बहता है। बच्चे के मुँह और शरीर पर छोटे-छोटे लाल दाने उभर आते हैं। यह दाने पूरे शरीर पर फैल जाते हैं। इससे बच्चे को निमोनिया भी हो सकता है और बच्चा मर भी सकता है।

**उपचार :** बच्चे को खसरा से बचाने के लिये पैदाइश के बाद 9 से 12 महीने के अन्दर खसरे का टीका लगवाना चाहिए। इसके बाद 18 महीने से 24 महीने के अन्दर डी.पी.टी. का बूस्टर टीका तथा पोलियो की बूस्टर खुराक देनी चाहिए जिससे इसका असर काफी समय तक रहे।

माँ को भी गर्भावस्था में टिटेनस के 3 टीके लगते हैं जिससे माँ और नवजात शिशु को टिटेनस न हो। टीके गर्भावस्था शुरू होने के 6 से 9 माह के अन्दर लग जाने चाहिए। पहला छठे माह के बाद और दूसरा व तीसरा इसके एक-एक माह के अन्तर से।

टीकों के विषय में बच्चे के जन्म के बाद ही डॉक्टर से निर्देश लेते रहना चाहिए जिससे देर या लापरवाही न हो और बच्चे का अमूल्य जावन बच सके। ❐

# आरामदेह नींद जरूरी है

बाल्यकाल में आरामदेह नींद का विशेष महत्त्व हैं। प्रत्येक बालक को दिलो-दिमाग ताजा रखने व शरीर की थकान दूर करने के लिए नींद लेना पड़ता है। नींद लेने के कारण बच्चों की बढ़ोतरी ठीक होती है और उनका स्वास्थ्य सन्तोषजनक बना रहता है।

किसी भी नवजात शिशु को रात भर सोने की आदत नहीं डालनी चाहिए बल्कि आधी रात हो जाए तो नींद से जगाकर भी उसे एक बार दूध अवश्य पिलाना चाहिए। नींद में लगने वाली भूख के समय दूध मिल जाने से उसके स्वास्थ्य में लाभ होगा। वह स्वभाव से चिड़चिड़ा नहीं बन पाएगा। रात के समय बच्चे को दूथ पिला देने से माँ व बच्चा दोनों ही निश्चिन्त होकर सोते हैं।

बच्चा जैसे-जैसे बढ़ने लगता है, वह प्राकृतिक रूप से ही कम सोने लगता है। हर शिशु की आदत अलग-अलग तरह से सोने की होती है। दिन में अधिकतर शिशु झपकियाँ लेते हैं। रात में जहाँ तक हो सकता है, वे लम्बी नींद लेते हैं। यह अलग बात है कि कभी-कभी बीमारी की वज़ह से, भूख या प्यास के कारण अथवा मौसम के परिवर्तन की वजह से लम्बी नींद लेने में असमर्थ रहता है। दाँत निकलने के दिनों में भी वह पूरी नींद नहीं ले पाता। अस्वस्थ होने के कारण वह प्राय: बेचैन रहता है।

कुछ बच्चों को सोते समय अँगूठा चूसने की गलत आदत पड़ जाती है। यह आदत उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। इससे उनके दाँत भी ऊबड़-खाबड़ और टेढ़े-मेढ़े निकलते हैं। इस बुरी आदत को छुड़ाने का पूर्ण प्रयास करना चाहिए।

आपका बच्चा आरामदायक नींद सो सके इसके लिए उसे आवश्यक मात्रा में दूध, प्रोटीन और विटामिन युक्त तरल आहार देते रहना चाहिए। बच्चों को रात

को गरम व स्वादयुक्त सूप अथवा जल्दी पचने वाला कोई दूसरा अन्न देना भी लाभदायक होता है। सन्तुलित आहार देने के बाद शिशु को रात में दूध या ठण्डा पानी पिला देना चाहिए, ताकि भूख अथवा प्यास के कारण उसकी नींद में किसी भी प्रकार की बाधा ना पड़े।

जिस समय बच्चों के दाँत निकल रहे होते हैं, उस समय वह थोड़ी-थोड़ी देर में ही बेचैनी के कारण नींद से जाग जाता है। अतः उसे इस बीच दूध या ठण्डा पानी पिलाने से उसके मसूड़ों को आराम मिलता है। ज्यादा दर्द होने पर कोई पेटेंट दर्दनाशक दवा देना चाहिए।

दो वर्ष की आयु के बाद बच्चों में यथासमय सोने की आदत पड़ जाती है। बच्चों को समय पर सोने के लिए बराबर प्रोत्साहन देना चाहिए। दिन में भी भोजन के बाद बच्चों को करीब एक घण्टे तक अवश्य सुला देना चाहिए।

छोटे बच्चों की नींद में प्रायः बाहरी शोरगुल से अधिक बाधा नहीं पड़ती किन्तु बड़ा होने के साथ ही वह घर के शोर, चकाचौंध रोशनी व तेज संगीत से उत्तेजित होने लगता है। बच्चों की कल्पना-शक्ति के विकास के साथ-साथ अँधेरे व एकाकीपन के कारण अथवा अनजानी उत्सुकता की वजह से उनके मन में भय बैठ सकता है, अतः माताओं को चाहिए कि वे बच्चों के डर को दूर करने के लिए उन्हें सुलाते समय मीठी-मीठी लोरियाँ या अच्छी मनोरंजक कहानियाँ सुनाएँ। जब तक बच्चे को पूरी तरह से नींद न आ जाए तब तक उसके पास ही लेटी या बैठी रहें।

स्वास्थ्य के लिए वही नींद अच्छी कही जाती है जो सहज व सुखदायक स्थिति में शान्ति के साथ ली गई हो। बच्चों को डरा-धमकाकर नहीं सुलाना चाहिए। स्वाभाविक रूप से आई नींद ही बच्चों के व्यक्तित्व के विकास तथा उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक है। हर माता का दायित्व है कि शैशवावस्था से बाल्यावस्था तक बच्चों की नींद का विशेष रूप से ख्याल रखें।

❒

# बच्चों की व्यावहारिक पाठशाला : घर

प्राय: देखा गया है कि अभिभावक अपने बच्चों को ढाई–तीन वर्ष की छोटी उम्र में ही स्कूल में पढ़ने भेज देते हैं। इसमें अधिकांश का उद्देश्य यह रहता है कि बच्चा अगर घर में रहा तो परेशान करेगा, चीजें तोड़ेगा और समय नष्ट करेगा। स्कूल जाएगा तो उनकी परेशानी भी कम होगी और कुछ–न–कुछ सीखकर ही आएगा। किन्तु छोटे बच्चों के बारे में ऐसा सोचना उचित नहीं है। उनके लिए घर ही सबसे बड़ी, वास्तविक और व्यावहारिक पाठशाला है, जहाँ वे माता–पिता या अभिभावकों के स्नेह–संरक्षण में बहुत–सी बातें सीखते हैं।

घर में अभिभावक बच्चों के साथ सामान्य व्यवहार करते हुए उन्हें गिनती, माप–तौल, दूरी व रंग आदि का ज्ञान आसानी से करा सकते हैं। हालाँकि बच्चे देर–सबेर स्कूल में भी ये बातें सीख लेते हैं। तथापि घर में उन्हें जितना सरल और स्वतंत्र वातावरण मिलता है, वह स्कूल में कदाचित् सम्भव नहीं। यहाँ हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि उन्हें स्कूल में भेजा ही न जाए, बल्कि बच्चे यदि ये बातें घर में सहज ही सीख रहे हों तो उन्हें घर में भी अवश्य पढ़ाना चाहिए।

घरों में अक्सर हमें सीढ़ियाँ चढ़ना और उतरना पड़ता है। छोटे बच्चे भी हमारे साथ चढ़ते–उतरते हैं। गिनती का ज्ञान उन्हें इन सीढ़ियों के जरिये भी कराया जा सकता है। सीढ़ियाँ चढ़ते–उतरते हम उन्हें एक, दो, तीन, चार गिनती सिखा सकते हैं। कभी जब वे अकेले चढ़ रहे हों तब भी उनसे पूछ सकते हैं कि वे कितनी सीढ़ियाँ चढ़े आदि। इस तरह वे प्रारम्भिक दस तक की गिनती सीढ़ियाँ गिनकर आसानी से सीख जाएँगे।

किसी चीज को इकट्ठा करने और गिनने का काम बच्चे बड़े चाव से करते हैं। घर की छोटी–बड़ी चीजों, जैसे—साबुन, माचिस, हेयर क्लिप, पेस्ट, काँच की गिलासें, प्याले, चम्मच आदि खरीदने के बाद जब आप उन्हें नियत जगह पर रख रहे हों तब बच्चों के हाथों से कई बार उनकी गिनती करवा कर रख सकते हैं।

यही नहीं जब आप बेर, अमरूद, टमाटर, सेव, मौसमी, संतरा, आम, नीबू, चीकू व अंगूर आदि फल खरीदें तो उन्हें बच्चों के हाथों में देकर गिनती का ज्ञान करा सकते हैं, जैसे—चार अमरूद, बारह बेर, तीस अंगूर आदि। बच्चे फलों की चाव से गिनती करके आपको बताएँगे। जाने-अनजाने गिनती उन्हें याद हो जाएगी। फलों की भाँति सब्जियों के द्वारा भी बच्चे गिनती का ज्ञान अर्जित कर सकते हैं। मसलन, आप किसी दिन आलू, टमाटर, प्याज, गाजर, परवल, टिंडा, भिण्डी या मटर आदि कोई भी सब्जी खरीद कर लाएँ तो छोटे बच्चों को गिनती-ज्ञान कराने के लिए उन्हें कहिए—'बेटे जरा टोकरी में से छह आलू देना.।' इसी तरह आप पाँच प्याज, सात गाजर, दस परवल या पच्चीस भिण्डी आदि की माँग कर सकते हैं। कभी-कभी इस तरह की संख्याओं को कम ज्यादा भी किया जा सकता है। इससे उन्हें जोड़, बाकी का मूल सिद्धान्त समझ में आने लगेगा।

बच्चों को जब दस-बीस की छोटी गिनती का ज्ञान हो जाए तो उन्हें मूँगफलियों, मटर के दानों, फालसों, चनों और करौंदों आदि के माध्यम से सौ तक की गिनती का ज्ञान कराया जाना उचित होगा। ऐसी ही घर की दूसरी छोटी इकाइयों के जरिये वे बड़ी गिनती सीख सकेंगे।

उक्त दृष्टि से घर का हर कमरा छोटे बच्चे के लिए पाठशाला का कमरा है। फर्क सिर्फ इतना है कि वहाँ उसे नियंत्रण में रहना पड़ता है और घर में वह स्वतंत्र रहकर बहुत-सी बीतें सीख जाता है।

आपने अक्सर देखा होगा कि अपने घर की बगिया, घास या पार्क में पुरुष एवं महिलाएँ अपना-अपना काम करते हुए बैठे रहते हैं। पिताजी सिगरेट पीते हुए पत्रिका पढ़ रहे हैं तो माताजी हाथ में स्वेटर या क्रोशिया बुनने की सलाइयाँ लिए अपना काम कर रही हैं। पास में बैठे या बाग में खेलते हुए बच्चे की हरकतों से वे प्रायः उदासीन रहते हैं। जब बच्चा कोई पौधा गिरा देता है या नल खोल देता है अथवा गिरने-पड़ने की स्थिति में आ जाता है तो उसे कुछ देर डाँट-डपट कर वे पुनः अपने काम में लग जाते हैं। अभिभावक यह भूल जाते हैं कि यह समय बच्चे को गिनती और रंग का ज्ञान कराने का बहुत अच्छा मौका है। ऐसे में वे उसे कह सकते हैं—'बेटे यहाँ ज्यादा हरी घास पर आकर खेलो।' या 'हरी घास में हम पानी देंगे।' आदि।

सौभाग्य से यदि आपकी बगिया में गुलाब, चमेली, गेंदा, केली या दूसरा कोई रंगमय फूल खिला हुआ है तो आप बच्चे से कह सकते हैं—'देखो मुन्ने! फूल का रंग कैसा गुलाबी हो रहा है।' या 'जरा पीले फूल तोड़ कर लाना।'

'इस बार केली का फूल कितना लाल आया है।' हाँ, यदि फूल पर्याप्त संख्या में हैं तो उन्हें खास संख्या में तोड़ कर लाने को भी कह सकते हैं। बड़े पत्ते वाले पौधों के पत्तों के रंग और संख्या के बारे में भी बच्चों को बताया जा सकता है। फूलों की पंखुरियों को भी गिनती-ज्ञान का माध्यम बनाया जा सकता है।

छोटे बच्चों के लिए अनेक परिवार तीन या दो पहियों की साइकिल खरीद कर रखते हैं। बच्चे जब उसे चला रहे हों तो एक निश्चित स्थान पर आने-जाने के चक्कर गिनकर भी उन्हें गिनती सिखाई जा सकती है। उससे कहा जा सकता है कि वह इस बार सात चक्कर लगाकर दिखाए अथवा कम या ज्यादा।

कुछ बड़ा होने पर बच्चा घर अथवा आस-पास की बिना प्लास्टर वाली दीवार की ईंटें गिनकर बता सकता है। जन्म दिन पर उसे दी जाने वाली टॉफियों की गिनती भी उसके ज्ञान में इजाफा कर सकती है।

यदि आपका घर किसी व्यस्त सड़क पर है और आपको बालकनी से सड़क की गतिविधियाँ देखने की सुविधा है तो आपका बच्चा आपके ऐसे आदेश का पालन बहुत ही आज्ञाकारिता के साथ करेगा जब आप उससे कहेंगे—'मुन्ना! देखो सड़क पर लाल रंग की कितनी गाड़ियाँ गुजरीं और सफेद रंग की कितनी।'

❐

# जब उन्हें पहली बार स्कूल भेजें .....

साधारणतया तीन से चार वर्ष की उम्र का हो जाने पर अनेक अभिभावक अपने बच्चों को पढ़ने के लिये स्कूल भेज देते हैं। बच्चे स्कूल के वातावरण से परिचित नहीं होते हैं। अतः स्कूल जाने की उनमें जो सहज रुचि होनी चाहिए उसका प्रायः अभाव होता है। सामान्यतः अभिभावक घर पर रहते हुए बच्चों में स्कूल जाने की सहज रुचि को जागृत करने के लिये कोई पृष्ठभूमि पहले से तैयार नहीं करते। साथ ही अधिकांश अभिभावक बच्चों को स्कूल में दाखिल करा देने के बाद इस बात की चिन्ता नहीं करते कि बच्चों को स्कूल का नया वातावरण अनुकूल पड़ गया अथवा नहीं। स्कूल जाने और वहाँ की गतिविधियों में बच्चों की रुचि बनाये रखने का प्रारम्भ में कोई प्रयत्न नहीं होता तो बच्चे उस नए वातावरण में स्वयं को ढ़ाल नहीं पाते। उनके मन–मस्तिष्क में एक अज्ञात आशंका, असुरक्षा तथा अरुचि पनपने लगती है। अरुचि और असुरक्षा की वह भावना बच्चों को स्कूली पढ़ाई को ग्रहण कर सकने की शक्ति नहीं देती और उनका विश्वास निरन्तर डगमगाता रहता है। इससे बच्चों का मानसिक विकास रुक जाने की सम्भावनाएँ बलवती हो जाती हैं।

वास्तव में बच्चों की पहली और प्राथमिक पाठशाला तो घर ही है। योग्य अभिभावकों के संरक्षण में रहकर बालक वहीं अपने भावी विकास की जमीन तैयार करता है। जैसे–जैसे बच्चे के स्कूल भेजने के दिन करीब आने लगें अभिभावकों को चाहिये कि वे घर में उसके लिए ऐसे वातावरण का निर्माण प्रारम्भ कर दें ताकि स्कूल जाने में उसकी रुचि जागने लगे। जब उसे स्कूल में दाखिल करवा दिया जाय तो वह स्वयं को असहाय और असुरक्षित समझ कर वहाँ से भागने की चेष्टा न करे। बल्कि रुचि के साथ अपने शिक्षकों के संरक्षण में विद्याध्ययन करे।''

अनेक माताएँ अपने छोटे बच्चों की हरकतों और शरारतों से तंग आकर अक्सर अपनी नाराजगी प्रकट करते हुए उनसे कहा करती हैं, ''तू शैतानी करता हुआ, यूँ नहीं मानेगा। कुछ दिन ठहरजा। जब तुझे स्कूल में भरती कराऊँगी और मास्टर जी तुझे अपने डण्डे से पीटेगें तब तू बाज आये। अपनी सारी शैतानी भूल जायेगा।

बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर इस तरह की डाँट का सीधा असर यह होता है कि उसके मन-मस्तिष्क में स्कूल और वहाँ के मास्टजी का एक अज्ञात भय घर करने लगता है। उसके मन में ऐसा भाव आने लगता है कि स्कूल जाने पर उसका हित नहीं हो सकता। एक ओर मास्टर जी के डण्डे का भय और दूसरी ओर माँ की नाराजगी। इन दोनों के बीच झूलता हुआ बालक स्वयं को कभी स्कूल जाने के लिए तैयार नहीं कर पाता, बल्कि सदैव उससे बचने की ही चेष्टा करता हुआ दिखायी देता है। वह स्कूल जाने से सदा घबराने लगता है।

बच्चा स्कूल को कैदखाना समझने की बजाय स्कूल ही समझे, इसके लिए जरूरी है कि अभिभावक उसके सामने स्कूल की भयानक तस्वीर पेश न करें, अपितु उसे एक आदर्श संस्था के रूप में उसके सम्मुख रखें। इसके लिए घरों में पहले से ही ऐसा वातावरण बनाया जा सकता है। फुर्सत के समय माताएँ अपने घर के बच्चों के साथ-साथ पड़ोस से भी छोटे बच्चों को बुला लें और उन्हें एक साथ बिठा कर मनोरंजक कहानियाँ सुनायें, उनके साथ ज्ञानवर्धन के खेल खेलें, गिनती और चीजों को तरतीबवार लगाने आदि के ऐसे सवाल पूछें जिनसे उनमें बाल-सुलभ जिज्ञासा और उत्तर देने की क्षमता पैदा हो। ऐसा करके जहाँ वे उनमें एक साथ बैठकर कुछ सीखने-पढ़ने की भावना का विकास करेंगी वहाँ स्कूल जाने के लिए एक सही पृष्ठभूमि का निर्माण भी कर सकेंगी। बच्चों को इस प्रकार शिक्षित करते समय उन्हें यह भी बताते रहना चाहिए कि जब वे स्कूल जायेंगे तो वहाँ उन्हें बहुत-से दूसरे अच्छे बच्चों के साथ बैठकर सुन्दर-सुन्दर कहानियाँ सुनने को मिलेंगी। शिक्षिका उन्हें बड़े लाड़-प्यार के साथ दूसरे बच्चों की तरह ही ज्ञानवर्धक मजेदार बातें बतायेंगी। स्कूल को हौ आ डरावनी जगह के रूप में पेश करके वे कभी बच्चों का हित नहीं कर सकतीं।

एक सीमा तक बच्चों को यह प्रलोभन भी दिया जा सकता है कि जब वे स्कूल से लौटकर आएँगे तो उन्हें घर में बहुत बढ़िया चीजें खाने को मिलेंगी। पिताजी बाजार से उनके लिए अच्छे खिलौने भी लायेंगे। याद रखिए, यह प्रलोभन केवल प्रलोभन ही न रहे। बच्चे जब स्कूल जाकर लौटें तो उन्हें वास्तव में ऐसा पुरस्कार दिया जाय।

बच्चा यदि प्रारम्भ के दिनों में अकेला स्कूल में देर तक बैठे रहने से कतराता या घबराता हो तो माताएँ उसे यह विश्वास दिलाकर कि वे स्कूल में ही बैठी हैं, उसे कक्षा में भेज दें। एक-दो दिन उसका विश्वास जमाने के लिए ऐसा करें भी।

किन्तु बाद में वहाँ अपनी नियमित उपस्थिति को निरर्थक बताते हुए बच्चे को अकेले ही स्कूल में जाने के लिए तैयार करें। निश्चय ही बच्चा उनका कहना मानने लगेगा।

स्कूल से लौट आने पर बच्चे को कभी ऐसा भाव मत जताइये जैसे वह किसी कैद से छूटकर आया है बल्कि स्कूल जाने के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए उसकी प्रशंसा कीजिये और यह बताइये कि वह बहुत अच्छा काम करके लौटा है। उसके साहस की सराहना कीजिए और भविष्य में स्कूल के कार्य-कलापों में और अधिक दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित कीजिए। स्कूल में हुई बातों, खेल अथवा पढ़ाई के सम्बन्ध में बच्चे से सीधे-सादे प्रश्न भी अवश्य करने चाहिए, जिससे उसे लगे कि उसके अभिभावक स्कूल भेजने में काफी दिलचस्पी रखते हैं।

अपने मास्टर या शिक्षकों के प्रति बच्चे के मन में सदा सम्मान, प्रेम और अपनेपन के भाव भरना उचित होता है। स्कूल में पहुँचने के याद उन्हें शिक्षकों का स्नेह मिलता है। इससे इस बात का विश्वास हो जायेगा कि अपने अभिभावकों से दूर रहकर भी वे जरा भी असुरक्षित नहीं हैं। बच्चों को स्कूल भेजने का काम ऐसा नहीं है कि उनका दाखिला कराया और आप अपने दायित्व से मुक्त हो गए। आपने समझा कि—'चलो, सर से आफत टली। बच्चा घर में रहता था तो इधर-उधर ऊधम करता; घर की चीजें तोड़ता-फोड़ता; अब उसकी हरकतों से छुट्टी मिली।' ऐसा करके आप उसे खतरे में डाल सकते हैं।

इसके लिए पहले आपको ऐसे स्कूल की तलाश करनी पड़ेगी जिसमें आपके बच्चे को पढ़ने और मानसिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण मिल सके। यदि आसपास में कोई नर्सरी स्कूल हो तो और भी अच्छा है। ऐसे स्कूलों में खेल-खेल में बच्चों को शिक्षित होने का अवसर दिया जाता है। उनमें एक-दूसरे के प्रति स्नेह की भावना भरी जाती है। घर-बाहर की अनेक वस्तुओं की जानकारी कराना, मेलजोल से रहना, तथा रंग-बिरंगे शैक्षिणक उपकरणों द्वारा बच्चों का ज्ञानवर्धन करना इन स्कूलों की विशेषता होती है।

❐

# कोमल बाल-मन को सही दिशा दें

माता-पिता शिशु के प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षक होते हैं। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते जाते हैं, वे स्वतंत्र रूप से घूमना-फिरना पसन्द करने लगते हैं। समयान्तर से वे नये-नये लोगों के सम्पर्क में आते हैं। नई-नई परिस्थितियों से गुजरते हैं। नया अनुभव प्राप्त करते हैं। लोगों के सम्पर्क में आने से न जाने कितने ही नये सवाल उनके दिमाग में उठते हैं। हर नया अनुभव किसी-न-किसी रूप में उनमें विकास और परिपक्वता लाता है और अपना अलग प्रभाव छोड़ता है।

स्कूल जाने की अवस्था से पहले तक एक सामान्य स्वस्थ, प्यारा बच्चा माता-पिता, सम्बन्धियों, पड़ोसियों और मित्रों के लिए सदा एक खिलौना-सा बना रहता है। सभी लोगों के संरक्षण और साहचर्य में वह छोटी-मोटी बातें सीखता है, जो उसके भावी जीवन के लिए बेहद जरूरी होती हैं। जीवन के बारे में पहली जानकारी उसे उन्हीं लोगों के माध्यम से प्राप्त होती है। ऐसे में समझदार माता-पिता बालक को सही प्रेरणा देकर उसे प्रशिक्षित करते हैं।

अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बालक विभिन्न अनुभव अर्जित करता है। तीन-चार साल का एक बच्चा यह समझ लेता है कि जब पापा-मम्मी कुछ नाखुश नजर आयें तो किसी चीज की फ़रमाइश करना ठीक नहीं।

बच्चे उन लोगों की ओर जल्दी और अधिक आकर्षित होते हैं, जिनसे उन्हें दुलार या सहमति मिलती है। वे उन्हीं जैसा बनने की कोशिश भी करने लगते हैं। यही उनकी अभिव्यक्ति और प्रशंसा पाने का बाल-सुलभ तरीका है।

बच्चों की दृष्टि बड़ी पैनी और गहरी होती है। वे बहुत ही गहराई से बड़ों के व्यक्तित्व को निरखते-परखते हैं। सामान्य व्यक्ति के लिए इसका अन्दाज लगाना भी मुश्किल होता है।

बच्चा जब स्कूल जाना प्रारम्भ कर देता है, तो वह एक बिल्कुल नये माहौल और नये लोगों के सम्पर्क में आता है। वे नये लोग जाने कितनी नई परिस्थितियाँ

उसके सामने चुनौती के रूप में खड़ी कर देते हैं। स्कूल में बच्चे अलग-अलग स्वभाव के होते हैं। यहाँ उनका जीवन नियमितता के घेरे में बँधने लगता है। नई दोस्ती की भी शुरूआत होती है। स्कूल में ही उसे शिक्षक मिलते हैं, जो प्रतिदिन उसे कितनी ही नई व अनोखी बातें सुनाते और सिखाते हैं।

शिक्षक उसकी अनगढ़ विचार-प्रक्रिया को नई सुलझी हुई दिशा प्रदान करते हैं। प्रायः जिन बातों को उसे घर के माहौल में समझने में दिक्कत होती है, वे बातें वह स्कूल जाकर स्पष्ट सीख जाता है। वे बातें उसके दिमाग में अनुभव के रूप में जमकर बैठ जाती हैं।

शिक्षकों की देखरेख में वह तर्क का इस्तेमाल करना सीख लेता है और धीरे-धीरे लिखना, पढ़ना और नये-नये सवाल करना भी शुरू कर देता है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है, वह विभिन्न प्रकार का ज्ञान अपने अन्दर समेटता चलता है।

परिवार, समाज व दोस्तों के बीच रहकर वह न्याय, अन्याय, निर्दयता, उदासीनता आदि अनेक मानवीय भावनाओं से परिचय प्राप्त करता है। कभी-कभी विरोधी घटनाएँ उसके अनुभव को हिला देती हैं, तब उसके मन में संघर्ष के बीज फूटने लगते हैं।

बच्चों का कोमल बाल-मन समाज की ऊँच-नीच देखकर जो सोचता और करता है, उन सब बातों और घटनाओं के सिलसिले में उसे स्वयं से बड़ों, शिक्षकों, माता-पिता और अभिभावकों के सही दिशा-निर्देश की निरन्तर आवश्यकता रहती है। विद्यालय और दोस्तों के बीच रहने के बावजूद भली-बुरी बातों की पहचान और विवेकपूर्ण निर्णय की शक्ति उसे परिवार से भी प्राप्त होती है। बच्चों के मन में विवेक तथा उचित निर्णय की ज्योति सदा माता-पिता, शिक्षक और अभिभावक ही जलाते हैं। अतः हमें बच्चों की गतिविधियों पर नजर रखते हुए इन्हें सदा नैतिक निर्देश देते रहना चाहिए, ताकि वे विभिन्न कठिन परिस्थितियों के सामने आने पर सही निर्णय कर सकें।

❑

# बच्चों की पोशाक कैसी हो?

बच्चों को किस मौसम में कौनसी पोशाक पहनायी जाए, इस बात का ज्ञान प्रत्येक गृहणी को होना चाहिए। अपने बच्चों को आधुनिक बनाने के चक्कर में अनेक महिलाएँ बच्चों को अपनी तरह की चुस्त और कसी-कसी पोशाकें पहनाकर उनके शारीरिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हुई देखी गई हैं। वस्तुत: वे यह नहीं जानतीं कि पाँच से छ: वर्ष तक के बच्चों का शारीरिक विकास बड़ी तेजी से होता है। इस अवस्था में शरीर का प्रत्येक अंग शीघ्रता से विकसित होता है। यदि उन्हें प्रारम्भ से ही चुस्त या तंग कपड़े पहनाये गये तो उनका स्वाभाविक विकास रुक जायेगा और वे क्षीण व कमजोर होने लगेंगे।

पाँच से छ: सात वर्ष की उम्र के बच्चे प्राय: खेलना अधिक पसन्द करते हैं। ऐसे में अगर उनके कपड़े चुस्त हुए तो वे आसानी से दौड़-भागकर, खेल नहीं सकेंगे। जब वे स्कूल जाते हैं तब भी जरा-सी छुट्टी पाते ही खेलना प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसे समय बच्चों की चुस्त पोशाक उनके लिये स्वास्थ्य की दृष्टि से अनुपयुक्त होगी। खेलने के लिए वस्त्र ऐसे होने चाहिये जिन्हें पहनकर हर अंग आसानी से मनमाने ढंग से मोड़ा अथवा हिलाया-डुलाया जा सके। अत: बच्चों की वेशभूषा पर ध्यान देना हर गृहिणी का कर्त्तव्य है। बच्चों के पहनावे या पोशाक के बारे में महिलाओं को कुछ खास बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

सबसे पहली बात यह है कि ऋतु-परिवर्तन के अनुसार बच्चों की वेश-भूषा में भी परिवर्तन करते रहना चाहिये। यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि बच्चों की वेश-भूषा किसी भी मौसम की हो, ढीली होनी चाहिए।

गर्मियों में छोटे बच्चों को बिना आस्तीन के हल्के झबले व फ्राक पहनाने चाहिए। चलने-फिरने वाले बच्चों के लिए आधी आस्तीन की बुशर्ट व नेकर ठीक रहती है। पूरी आस्तीन के कपड़ों में बच्चे ज्यादा गर्मी महसूस करते हैं और उन्हें उलझन-सी अनुभव होने लगती है। इस ऋतु में बच्चों को बाँहदार रंग-बिरंगी बनियानें भी पहनायी जा सकती हैं। बनियान पहनकर बच्चे स्मार्ट भी दिखते हैं और

अपना हर काम आसानी से कर सकते हैं। बच्चों के कपड़े हल्के रंग के छोटे बेल-बूँटों वाले होने चाहिए। गहरे रंग के कपड़े, जैसे—काला, नीला, हरा, नारंगी आदि इस ऋतु में उपयुक्त नहीं रहते। गहरे रंग के कपड़े गर्मी को शीघ्र ही अपनी ओर खींचते हैं। अत: बच्चों व बड़ों—सभी को इस ऋतु में हल्के रंग के ही कपड़े पहनने चाहिये। इन दिनों पहने जाने वाले कपड़े सूती होंगे तो बच्चों को और भी सुविधा होगी।

सर्दी के मौसम के कपड़े गहरे रंग के होने चाहिए। इस ऋतु में बच्चों को पूरी बाँहों के कपड़े ही पहनाना श्रेयस्कर रहता है। बच्चे अधिकतर बाहर लॉन में ही खेलते हैं। अत: उन्हें ठण्ड लगने का डर रहता है। इन दिनों पैरों की ठण्डक रोकने के लिए उन्हें ढीले-ढाले पैजामे भी पहनाना चाहिये। इन पैजामों के नेफे में एलास्टिक का प्रयोग उचित रहता है। बच्चे उन्हें आसानी से पहन-उतार सकते हैं। इस क्रिया में उनका वक्त भी बर्बाद नहीं होता। ध्यान रहे पैजामे उन्हें सुबह-शाम ही पहनाए जाने चाहिये। दिन की धूप में खेलते समय बच्चों को नेकर पहना देनी चाहिए। सर्दी के मौसम में सुबह-शाम बच्चों को जूते, मौजे भी पहनाए रखना ठीक होगा। इस मौसम में कानों में भी मफलर आदि बाँध देना चाहिये ताकि उन्हें ठण्ड न लगे।

बच्चों को नेकर पहनाया जाना हर मौसम में उपयुक्त होता है, पर नेकर न बहुत ढीली न बहुत चुस्त होनी चाहिये। नेकर के ऊपर पेटी नहीं बाँधनी चाहिए। क्योंकि पेटी बाँधने से बच्चों की कमर पतली होने का भय रहता है।

आजकल माताएँ आधुनिकता के चक्कर में अपने बच्चों को टेरीकाट व नाइलान के कपड़े पहनाती हैं। ये कपड़े स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक होते हैं। इनको पहनने से शरीर का वायु से सम्बन्ध नहीं रह पाता, जिससे चर्म रोग पनपने का भय रहता है। अगर आप अपने बच्चों को इस प्रकार के कपड़े पहनाती हैं तो केवल 2-3 घण्टे के लिए ही पहनायें।

बच्चों के स्कूल की ड्रेस भी सूती ही बनवानी चाहिये क्योंकि स्कूल में बच्चा कम-से-कम छ: घण्टे व्यतीत करता है। स्कूल में ही नहीं, सभी जगहों पर उचित और उपयुक्त पोशाक पहनाकर आप बच्चों के स्वास्थ्य तथा उनके शारीरिक विकास की गति को नियमित बनाए रख सकती हैं।

# कैसे हों छोटे बच्चों के खिलौने

बच्चे अक्सर खिलौने दिलाने की जिद करते हैं। आप उन्हें खिलौने दिलाना भी चाहते हैं, पर आयु और वय के अनुसार उन्हें कैसे खिलौने दिलाना उपयुक्त होगा, आइये इस पर थोड़ा विचार करें।

आज के प्रगतिशील युग में हर चीज का रूप-रंग निखर गया है। बच्चों के खिलौनों की दुनिया में तो जैसे तहलका ही मच गया है। आज का बच्चा भी पहले के बच्चों के मुकाबले में अधिक कुशाग्र हो गया है। वह पैदा होने के कुछ ही हफ्तों बाद अपने आस-पास की चीजों की ओर गौर करने लगता है।

छोटे बच्चों के पालने में या पलंग के ऊपर एक डोरी की सहायता से रंग-बिरंगे हवा में हिलने वाले आकर्षक खिलौने टाँग देने चाहिए। बच्चा उस हिलती-डुलती वस्तु को मगन होकर देखता है। इससे उसकी दृष्टि में पैनापन और ठहराव आता है।

तीन से छः महीने का बच्चा हल्के-फुल्के खिलौने पकड़ने लगता है। तब उसे ऐसे खिलौने देने चाहिए, जिन्हें वह आसानी से पकड़ सके। खिलौने ऐसे होने चाहियें जिनसे बच्चे को चोट न लगे।

छः महीने से एक वर्ष तक का बच्चा पहले घुटनों के बल तथा फिर पैरों से चलने लगता है, तब उसे चाबी से चलने वाले खिलौने बहुत आकर्षित करते हैं। ऐसे खिलौने जानवर, ट्रेन, हवाई जहाज या किसी अन्य रूप में बाजार में खूब मिलते हैं। वे उन्हें दिलाए जा सकते हैं।

बच्चे उन खिलौनों को बहुत पसन्द करते हैं, जिन्हें वे आसानी से स्वयं से चिपका सकें। सभी बच्चों को कोई-न-कोई खिलौना बहुत प्रिय होता है चाहे वह बन्दर, भालू हो या गुड्डा,-गुड़िया। बच्चे इन खिलौनों के साथ जीवित प्राणी जैसा व्यवहार करते हैं। वे उन्हें अपने ही साथ नहलाते, खिलाते एवं सुलाते हैं तथा खास खिलौने के इधर-उधर हो जाने पर बेचैन हो उठते हैं।

खिलौने खरीदते समय इस बात का ध्यान रखिए कि खिलौना कैसा भी हो, गन्दा होने पर उसे धोया जा सके। खिलौने की आँखें, नाक इत्यादि मजबूती से जुड़े होने चाहिए, ताकि बच्चे उनकी चाहे जितनी भी उठा-पठक करें वे आसानी से नहीं टूट सकें।

आजकल बाजार में जो अनेक प्रकार के खिलौने मिल रहे हैं उनमें कुछ ऐसे भी हैं जो दिखने में तो अच्छे लगते हैं लेकिन उनका उपयोग खतरे से खाली नहीं। तोप, तमंचा,.बन्दूक जिनके साथ लोहे की गोलियाँ आदि मिलती हैं, उन्हें सावधानी के साथ खरीदना चाहिए। इसी प्रकार जिन खिलौनों में विस्फोटक पदार्थों का प्रयोग होता है, उनसे भी बचना चाहिए।

खिलौने बच्चों के मानसिक विकास में बहुत सहायक होते हैं। बच्चा इनसे सीखता भी है, और उनके साथ खेलकर मगन भी रहता है। अतः उसकी रुचि के खिलौने देकर उसका मनोरंजन तथा ज्ञानवर्धन करना चाहिए।

❐

# माँ, कह एक कहानी

रात को सोते समय या फुर्सत के समय घर के छोटे बच्चे अपनी माता से प्राय: कोई-न-कोई कहानी सुनाने का.आग्रह करते रहते हैं। बहुत-सी माताएँ इसे मुसीबत समझकर टालने की कोशिश करती हैं। जिज्ञासा और बाल-मनोविज्ञान की दृष्टि से ऐसा करना उचित नहीं होता। बच्चों की ऐसी जिज्ञासा बहुत सामान्य होती है और उसे किसी-न-किसी तरह से राह मिलनी ही चाहिए।

कभी अपने जीवन में क्षण या दो क्षण रुककर हम यह सवाल स्वयं से पूछ सकते हैं। स्वयं अपने बचपन को याद कीजिए, जब रोज रात को सोने से पहले दादा, नानी अथवा आपकी माँ अच्छी-अच्छी कहानियों के माध्यम से आपको कल्पना लोक में ले जाती थीं। कहानी 'एक था राजा' या 'एक थी चिड़िया' या 'एक थी परियों की राजकुमारी' से शुरू होकर आपकी नन्हीं भोली कल्पना में अनेक सतरंगी फूल खिलाती थी।

आधुनिक समय में यही काम टी.वी., रेडियो, वीडियो और कॉमिक्स कर रहे हैं। पर क्या टी.वी. के सभी कार्यक्रम बच्चों के लिए उपयुक्त और अच्छे होते हैं? सच पूछिए तो उन कथा-कहानियों की आवश्यकता है, जो उनकी कल्पना की अँगुली थामकर, उनकी विकसित होती समझ को दुलार सके। इन रास्तों को ढूँढना आपका काम है। बच्चों को उनकी कहानियाँ सुनाने तथा उनकी रुचि को विकसित करने में आप महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

कहानियों के जादू से नन्हे-मुन्नों के भाव जागृत करने के लिए रोज अधिक समय नष्ट करने की जरूरत नहीं, केवल दस-पन्द्रह मिनट ही काफी हैं। आप कहानी की दुनिया से उनका परिचय करवा सकते हैं। यह काम या तो सोने से पहले अथवा जब आप घर का कामकाज निपटाकर दोपहर को दो घड़ी फुर्सत से अपने नन्हे शिशु को गोद में लेकर बैठती हैं, तब किया जा सकता है, यही समय है जब आप बच्चे को फूलों, तितलियों और परियों के कल्पना-लोक की सैर करवा सकती हैं। आप

देखेंगी कि धीरे–धीरे बच्चों पर इन सबका कितना अच्छा असर पड़ता है। धीरे–धीरे बच्चे ऐसे सभी कार्यक्रमों से विमुख हो जाएँगे जो उनकी कल्पना को ठीक तरह से राह देने में असमर्थ हैं। आवश्यकता है इस दिशा में उनकी सही रुचि और जिज्ञासा जागृत करने की।

माँ जब नन्हे शिशु को बाहों में लेकर उसे सुलाने की कोशिश करती हैं, तो न जाने कैसे उसे वे लोरियाँ याद आ जाती हैं, जो कभी स्वयं उसके लिए गाई गई थीं। वास्तव में इन लोरियों, नर्सरी राइम्स और शिशु गीतों का असर बच्चों पर छः मास की उम्र से ही पड़ना शुरू हो जाता है। इस समय वह अपने आस–पास की चीजों को पहचानने लगता है। एक–दो वर्ष तक का बच्चा आपकी कही बात समझने लगता है और दो से पाँच वर्ष तक का बच्चा सुनने के लायक हो जाता है। कहानी सुनने के लिए यही उम्र सही कही जा सकती है।

बच्चों को सुनाई जा रही कहानी के एक–एक शब्द का अर्थ समझाने की आवश्यकता नहीं है। वे अपनी भाषा द्वारा भले ही आपको न बता सकें; पर वास्तव में काफी बातें समझने लगते हैं।

नन्हे–मुन्ने अधिकतर चिड़िया, कुत्ता, घोड़ा, हाथी, खरगोश तथा ऐसे ही अन्य जानवरों की कहानी सुनना पसन्द करते हैं। इसका कारण यह है कि इन पशु–पक्षियों को वे नित्य देखते हैं और पहचानते हैं। इनमें उनकी रुचि होती है। 'पंचतंत्र' की तो सभी कहानियाँ जानवरों और पक्षियों को लेकर ही लिखी गई हैं। इसकी रचना पंडित विष्णु शर्मा ने सदियों पहले के राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए की थी। कहानियाँ सुनकर बच्चा बिना यह जाने कि वह कुछ सीख रहा है, बहुत कुछ सीख लेता है।

भूत–प्रेत तथा राक्षसों की कहानी बच्चों को पसन्द नहीं आती है। बच्चे इनको जिज्ञासावश सुनकर प्रायः डर भी जाते हैं। उत्तम यह होगा कि आप बच्चों को डाइन, भूत–प्रेत, दैत्य, दानव, राक्षस और जिन्न आदि की कहानियाँ नहीं सुनाएँ।

रंगीन चित्रों से सजी कहानी की किताबें, कॉमिक्स, चित्र–कथाएँ आदि बच्चे बहुत पसन्द करते हैं। यह बात आपने भी अनुभव की होगी कि जब कॉमिक्स दिख जाए तो वह तुरन्त उसे खरीदने की फरमाइश कर बैठता है। किन्तु कॉमिक्स तथा चित्रकथाएँ कुछ बड़े बच्चों को सुहाती हैं, छोटे बच्चे तो अपनी रुचि की कहानियाँ

आपसे ही सुनना चाहेंगे। अत: चाहे माताओं को इसके लिए स्वयं अच्छी कहानियाँ पढ़कर ही बच्चों को क्यों न सुनानी पड़ें, उन्हें सुनानी चाहिए।

बचपन की याद रही कहानियों का बच्चों के मन-मस्तिष्क पर स्थाई प्रभाव रहता है। अत: उन्हें आदर्श जीवन, साहस वीरता और दयालुता की कहानियाँ सुनाई जानी चाहिए। बच्चों को चरित्र-विकास की तथा प्रेरक जीवनियाँ भी कथा रूप में सुनाई जानी चाहिए।

माँ द्वारा कही गई कहानियों का बच्चों के मन मस्तिष्क पर स्थायी और विशेष प्रभाव पड़ता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। अनेक बार अनेक घरों में ऐसे प्रयोग किए गए हैं कि घर के पुरुषों ने बच्चों को जो कहानियाँ सुनाई वे उन्होंने न तो ध्यान से सुनीं और न वे उन्हें याद रहीं। माँ के द्वारा सुनाई गई कहानी वे जीवन पर्यन्त याद रखते हैं।

माँ, बच्चे की प्रथम गुरु होती है। अत: उसे अपना दायित्व पूरी तरह से निभाना होगा। नन्हीं-नन्हीं रोचक कहानियाँ आपके शिशु का मानसिक विकास करने में बहुत सहायक सिद्ध होंगी।

❐

# दुर्घटनाओं से सुरक्षा

छोटे बच्चों को पालना कोई आसान काम नहीं है, विशेषत: छ: माह तक की अवधि तक तो बच्चों का विशेष सतर्कता के साथ ध्यान रखना पड़ता है। इस उम्र में उनके प्रति बहुत-सी सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। कभी-कभी इनकी तरफ से लापरवाह होने पर कुछ ऐसे हादसे हो जाते हैं, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। छ: माह के स्वस्थ बच्चे घुटनों के बल चलने-फिरने लगते हैं। उन्हें घर में हो जाने वाली छोटी-मोटी सम्भावित दुर्घटनाओं से हमेशा बचा कर रखना आवश्यक होता है। यही छोटी-छोटी दुर्घटनायें कभी-कभी उनकी जान को खतरा बन सकती है।

घर में प्रत्येक ज्वलनशील पदार्थ, जैसे—दियासलाई, मिट्टी का तेल, जलती मोमबत्ती आदि उनकी पहुँच से दूर रखना चाहिए। जलती गैस या स्टोव छोड़कर बच्चों से कभी दूर नहीं जाना चाहिए। वरना वे अबोध अपना हाथ जलती चीज पर रख देते हैं। गरम पानी अथवा दूध उनकी पहुँच में कभी नहीं रखना चाहिए। बच्चे हाथ मारकर उसे गिरा सकते हैं और जल सकते हैं।

बच्चों को सोफे या ऐसी ही संकरी बिछावन पर लिटाकर उनसे दूर मत जाइये। यही कोशिश कीजिए कि ऐसी चीजों पर उन्हें कभी लिटाया न जाय, क्योंकि बच्चे हर समय हाथ-पैर चलाते रहते हैं। संकरी बिछावन से वे किसी भी समय नीचे गिर सकते हैं। ऐसे में चोटें तो आ ही सकती हैं, ऐसा भी हो सकता है कि शरीर का कोई अंग ही हमेशा के लिए बेकार हो जाय। बच्चों को ऐसे कपड़े ही पहनाए जाने चाहिए जो कि उन्हें आसानी से पहनाये जा सकें। तंग या बड़े कपड़े पहनाते समय कपड़ा मुँह पर या गले में फँस जाए। ऐसे में बच्चे को साँस लेने में परेशानी हो जाएगी। लम्बे कपड़े भी बच्चे के लिए परेशानी पैदा कर सकते हैं। हाथ-पैर चलाते समय कपड़ा कहीं फँस सकता है और बच्चे को साँस लेने में परेशानी हो सकती है। ऐसे समय में साँस रुक भी सकती है।

बच्चे के आस-पास रबड़ के खिलौने ही रखने चाहिए, टीन या प्लास्टिक के नहीं। बच्चे खिलौनों के साथ उठा-पटक भी करते हैं। ऐसे समय में टीन या

प्लास्टिक के खिलौनों से उन्हें चोट लग सकती है। अतः उन्हें ऐसे खूबसूरत खिलौनों से दूर रखना चाहिए जो उनकी जिन्दगी को बदसूरत बना दें।

नवजात शिशु को नहलाते समय बहुत ध्यान रखना चाहिए। उसे कभी पानी से भरे टब में नहीं नहलाना चाहिए। हो सकता है कि बच्चा आपके हाथ से छूट जाये। बच्चे को थोड़ा-सा बैठाकर किसी छोटे बर्तन में कम पानी लेकर ही नहलाना चाहिए।

छोटे बच्चों के आस-पास किसी भी प्रकार की दवा नहीं रखें वरना हाथ में आ जाने पर वे उसे मुँह में डाल लेंगे। टेबलेट या गोली गले में बगैर पानी के अटक सकती है जो आपके लिए बिन बुलाये मुसीबत हो सकती है।

चलता टेबल फैन जमीन पर नहीं रखना चाहिए वरना उसके पास जाकर वे उनमें हाथ डाल सकते हैं। इसी तरह स्विच या प्लग फर्श से कम ऊँचाई पर न लगे हों, इसका भी विशेष ध्यान रखें।

संक्षेप में हम यही कहेंगे कि अपने शिशु को हमेशा अपनी नजर के सामने ही रखें, तब ही इन दुर्घटनाओं से उनका बचाव हो सकता है।

❒

# बच्चों को शिक्षित बनाएँ

आज जिस घर में भी चौदह वर्ष से छोटी उम्र के बच्चे हैं, उनके माता-पिता को प्राय: यह शिकायत रहती है कि उनका बच्चा पढ़ता नहीं है। उसे लेकर सिर खपाना पड़ता है। उसका होमवर्क पूरा नहीं हो पाता और वह मासिक टेस्ट में अच्छे नम्बर नहीं ला पाता आदि।

यदि हम बच्चों के मानसिक विकास, बौद्धिक स्तर और उसकी रुचियों-अरुचियों की ओर ध्यान दें, तो पाएँगे कि हर बच्चा इन तीनों ही गुणों में अलग-अलग स्तर का होता है। यहाँ तक कि सगे भाई-बहनों तक में इनमें समानता नहीं पायी जाती। जब हर बच्चे का मानसिक स्तर, सोचने-समझने का ढंग, रुचि-अरुचि एक-सी नहीं होती तो हर बच्चे को एक ही ढंग से पढ़ाया भी नहीं जा सकता। माँ को भी बच्चे को पढ़ाने का ढंग उसके स्वभाव के अनुसार ही अपनाना होगा। माँ ही इस समस्या को मनोवैज्ञानिक ढंग से सुलझा सकती है। क्योंकि उसका अधिकतर समय बच्चे के साथ गुजरता है, इस कारण वह उसके स्वभाव से अच्छी तरह परिचित भी रहती है। यदि कोई बच्चा पढ़ने के समय शैतानी या तोड़-फोड़ करता है, उछल-कूद मचाता है, तो उसे मारने-पीटने या डाँटने से कुछ नहीं होगा। ऐसे में जरा सूझ-बूझ से काम लेना होगा। जहाँ तक हो सके पढ़ते समय आप उसके पास मौजूद रहें। उसे लिखाने व पढ़ाने के लिए जल्दबाजी न मचाएँ।

'जल्दी करो, मुझे यहाँ जाना है, वहाँ जाना है।' 'बेवकूफ के दिमाग में कोई चीज जल्दी आती ही नहीं।' 'एक बार बतला दिया, अब नहीं बताऊँगी।' 'मुझे तो और भी ढ़ेरों काम हैं।' इस तरह के कथन और जल्दबाजी से घबराकर हो सकता है आपका बच्चा गणित में अच्छा-खासा होते हुए भी दो और दो पाँच जोड़ने लग जाए क्योंकि एक ओर उसे डर लग रहा है कि माँ को कहीं जाना है; दूसरी ओर भय है मार या डाँट खाने का और मान-अपमान सूचक शब्दों को सुनने का। आप घर से बाहर जाते ही बच्चे को कितना ही सहेज जाएँ कि वह आपके पीछे बची पढ़ाई पूरी कर डाले, पर आपको लौटने पर निराशा ही हाथ लगेगी क्योंकि उसमें अभी अपनी पढ़ाई के प्रति जिम्मेदारी का अभाव है।

बच्चे की पढ़ाई की वजह से माता-पिता को अपने कुछ लुभावने कार्यक्रमों से हाथ धोना भी पड़ता है। ऐसे में अपनी समस्याओं का दोष बच्चे के माथे मढ़ना उचित नहीं है। उदाहरण के लिए कुछ अभिभावक अक्सर ये कहते हुए पाए जाते हैं—'सालों हो गए, पिक्चर देखे। बच्चों के मारे कहीं आ-जा नहीं पाते हैं। मैं निकली और ये भी खेलने लगे। हमारे माँ-बाप तो कभी हमारे सिर पर इस तरह पढ़ाई के लिए सवार नहीं रहे और एक ये नालायक हैं कि बस पूछो मत।'

इस तरह के आक्षेपों से बच्चा स्वयं को दोषी समझने लगता है और उसकी लिखाई-पढ़ाई की रही-सही रुचि भी खत्म हो जाती है।

अगर घर में दो बच्चे हैं और उनमें से एक पढ़ने में तेज है और दूसरा कमजोर तो दूसरे की बात-बात पर उससे तुलना न कीजिए—'भाई को देखो, वह तो अपने आप पढ़ता है और एक तुम हो, बस चौबीस घण्टे खेलकूद में ध्यान रहता है तुम्हारा।' आदि।

आप इस बात को नकार नहीं सकतीं कि प्रायः घर का बड़ा बच्चा छोटे की अपेक्षा जल्दी जिम्मेदार हो जाता है, क्योंकि मात्र तीन या चार का होते-होते दूसरी सन्तान प्रायः घर में आ जाती है। दूसरी सन्तान के आते ही माँ उसे लेकर अधिक व्यस्त हो जाती है। बड़ा बच्चा अपने छोटे-मोटे काम अपने आप करने लग जाता है, जैसे—नहाना, कपड़े पहनाना या फिर स्कूल का होमवर्क करना आदि। छोटा बच्चा बड़ी उम्र तक भी छोटा बना रहता है। माँ उसे जान-बूझ कर छोटा बनाए रखती है। अतः उसमें जिम्मेदारी की भावना भी देर से आती है।

'तेरे खेल के मारे हमारी नाक में दम है, पढ़ना-लिखना तेरे बस की बात नहीं।' बच्चों से ऐसा कहना उचित नहीं। क्योंकि बच्चों का खेलना कोई दुर्गुण नहीं है। जरा अपना बचपन याद कीजिए। क्या उस उम्र में आप खेल के पीछे दीवाने नहीं थे। जो बच्चे इस उम्र में खेलते नहीं, या शरारत नहीं करते, उनका सही मानसिक विकास प्रायः नहीं होता।

बच्चों का मन पढ़ाई में लगाने हेतु कोर्स की किताबों के अलावा उन्हें कुछ रंग-बिरंगी मासिक और पाक्षिक पत्र-पत्रिकाएँ मँगा कर दें। इससे भी छोटे बच्चे अनायास ही अक्षर-ज्ञान को बढ़ा लेते हैं।

बच्चों को शिक्षित बनाने में पुस्तकालयों का भी बड़ा योगदान होता है। यदि आपके बच्चे विद्यालय अथवा सार्वजनिक पुस्तकालय में बैठकर पढ़ने का समय नहीं निकाल पाएँ तो उनके लिए घर में ही उनकी रुचि एवं स्तर की पुस्तकों का एक निजी पुस्तकालय विकसित कर सकते हैं। इसमें संग्रहीत पुस्तकें भी उन्हें शिक्षित बनाने में काफी सहायक हो सकती हैं।

स्कूल में बच्चे का मासिक या वार्षिक नतीजा किसी कारणवश अच्छा न आए तो उसे परेशान न कीजिए। जरा सोचिए, एक तो उसे स्कूल में भी इसी कारण अपमानित होना पड़ा होगा, दूसरे आप घर में उसे अपमानित कर रही हैं। इससे उसकी ढिठाई बढ़ती जाएगी और साथ ही पढ़ाई में अरुचि भी। अच्छा तो यह होगा कि आप उन कारणों का पता लगाएँ जिनसे उसके अच्छे नम्बर नहीं आ पाते।

आप बच्चों की माँ और अभिभावक ही नहीं, एक मनोवैज्ञानिक भी हैं, जो बच्चे के मन का विश्लेषण करके शिक्षा में उसकी रुचि जागृत करती हैं। इसलिए आपका दायित्व बहुत बड़ा है। अगर आप अधैर्यवान हो जाएँगी तो अपने बच्चे को उन्नति के पथ पर कैसे बढ़ा सकेंगीं?

❐

# ........ ताकि वे पढ़ने से जी न चुराएँ

अभिभावकों को प्राय: यह शिकायत करते हुए देखा जाता है कि उनके बच्चे का मन पढ़ाई में नहीं लग रहा है। यह वास्तव में एक विचारणीय विषय है। किसी बालक का मन पढ़ाई में नहीं लग रहा है इसके विविध कारण हो सकते हैं, जैसे—बच्चों में सुरक्षा और स्नेह का अभाव। माता-पिता द्वारा उन पर कठोर अनुशासन रखना, बच्चों का विद्यालय के वातावरण में फिट न होना, उसमें कुण्ठा या हीन भावना ग्रन्थियों का पनपना, आत्मविश्वास की कमी तथा कुछ व्यवहारगत अन्य समस्याएँ आदि। यदि बालक की योग्यता, क्षमता और बौद्धिक स्तर के अनुरूप विषयों का चयन नहीं हो पाता है तो उसकी शक्ति का ह्रास होता है। साथ ही आन्तरिक प्रेरणा और स्थिर रुचि के अभाव में भी बच्चे पढ़ाई की ओर मन को एकाग्र नहीं कर पाते हैं। शिक्षकों द्वारा समुचित शिक्षण विधि को न अपनाये जाने से भी बच्चों का मन पढ़ाई से उचाट होने लगता है।

माता-पिता को अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मात्र इस बात से नहीं समझ लेनी चाहिए कि उन्होंने बच्चे को विद्यालय में प्रवेश दिला दिया है। यदि वे बच्चों में अध्ययन के प्रति लगन एवं रुचि उत्पन्न नहीं कर पाएँगे तो बच्चे पढ़ाई में मन नहीं लगा पाएँगे। इसलिए यह आवश्यक है कि उनकी विषयगत प्रगति नियमित रूप से देखी जाये। कभी-कभी बालक कुसंगति के कारण विद्यालय न जाकर अपना समय कहीं और व्यतीत करने लगता है। यदि शुरू में ही इस पर रोकथाम नहीं लगाई जाती है तो धीरे-धीरे यह गम्भीर समस्या बन जाती है इसलिए अभिभावकों को चाहिए कि वे समय-समय पर जानकारी करते रहें कि उनका बच्चा विद्यालय में नियमित रूप से जाता है या नहीं। बच्चों को योजनाबद्ध ढंग से अध्ययन के प्रति जागरूक बनायें और उनमें दृढ़ संकल्प का भाव उत्पन्न करें। पढ़ाई में पड़ने वाले व्यवधान से बच्चों को यथा सम्भव बचाने का प्रयास करें। बच्चों को संकोच का झिझक से दूर रखें जिससे वे अपनी बात को खुलकर आपसे कह सकें। ऐसा न करने से बच्चे समस्याओं से घिरे रहकर तनावग्रस्त हो जायेंगे और तनाव की स्थिति में उन्हें अध्ययन

के प्रति एकाग्र करने में कठिनाई होगी। अभ्यास, व्यवहारिक ज्ञान, प्रयोगशालाओं में नियमित प्रयोग और पुस्तकालय की विषयवस्तु से सम्बन्धित पुस्तकों के उपयोग के प्रति बच्चों को जागरूक बनाये रखें।

बच्चों को समय दीजिये, उनके गृहकार्य को पूरा करने में सहयोग कीजिए। अभिभावक बच्चों की गतिविधियों को जानने का प्रयास करें, उनकी सामयिक प्रगति और समस्याओं के निराकरण के लिए उन्हें विद्यालय से सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। विद्यालय में आयोजित अभिभावक गोष्ठी में भाग लेकर बच्चों की समस्याओं के निराकरण को प्रभावी बनाकर उन्हें पढ़ाई के प्रति उन्मुख किया जा सकता है।

बच्चों को उपेक्षित न होने दें। उनमें सदैव आत्मचेतना का विकास करें। बच्चों में संवेदनशीलता का विकास करके उन्हें स्वयं निर्णय लेने योग्य बनाना चाहिए। यदि आपके बालक में शैक्षिक पिछड़ापन है तो उसे कभी हतोत्साहित न करें। उसकी आलोचना भी न करें अपितु उत्साहवर्धन द्वारा सहयोग देकर उसके पिछड़ेपन को दूर करें। प्रेम, सहयोग और सहानुभूति द्वारा उसे अध्ययन के प्रति प्रेरित करना उपयुक्त होगा।

बच्चे के मित्रों पर भी खास नजर रखें। देखें कि वे कुसंगति में तो नहीं पड़ रहे हैं। उन्हें अत्यधिक संरक्षण न दें क्योंकि इससे उनमें दूसरों पर निर्भरता का विकास होता है। अच्छी शैक्षिक सम्प्राप्ति के लिए समय-समय पर उनकी प्रशंसा भी करें, इससे उनमें पढ़ाई के प्रति लगन की बढ़ोतरी होगी।

बालक की जिज्ञासा का समाधान न करने से उसकी संवेगात्मक कठिनाइयों में वृद्धि होती है जिससे शैक्षिक प्रगति समुचित रूप से नहीं हो पाती। कई बार बच्चे स्वयं कहते हैं कि पढ़ाई में मन नहीं लग पाता। इस स्थिति के मूल कारण को ज्ञात करने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा पढ़ाई से बचने के लिए वे बहाना बना सकते हैं तथा काल्पनिक बातों का सहारा लेकर झूठ बोल सकते हैं।

बच्चों के गृहकार्य एवं स्वाध्याय हेतु उचित स्थान तथा समय प्रदान करना चाहिए। याद रहे, पढ़ाई के समय उनसे घर का काम न करवायें तथा अन्य विषयों पर बातें करके उनका ध्यान भंग न करें। समय-तालिका के अनुसार बच्चों को पढ़ने के लिए कहें। अध्ययन से सम्बन्धित किताबें आदि दिलवाने में देर न करें अन्यथा बच्चा गृहकार्य करने में असमर्थ रहेगा। गृहकार्य न करने पर आपका बच्चा कक्षा में सजा भी पा सकता है। ऐसी स्थिति में पढ़ाई से उसका जी उचाट हो सकता है। बच्चों

में पढ़ाई के प्रति भय उत्पन्न नहीं होने दें। यदि बालक पढ़ाई से जी चुराता है तो उसे प्रताड़ित न करें, उसे समझायें और पढ़ाई के प्रति रुचि उत्पन्न करने में सहयोग दें।

तीव्र बुद्धि वाले बालकों से अपने बच्चे की तुलना करके उसमें हीन भावना न पनपने दें। विद्यालय की एक आकर्षक कल्पना उसके मन में सँजोयें जिससे वह स्कूल से भागने का प्रयास न करे। शैक्षिक खिलौने देकर उसे शैक्षिक बातों की जानकारी कराई जा सकती है। घर के कार्य, दैनिक जीवन की घटनाओं और वस्तुओं के माध्यम से उसके ज्ञानार्जन में सहयोग दें। बच्चों की पढ़ाई सम्बन्धी कार्य की जाँच करते रहें जिससे उनकी शैक्षिक प्रगति का वास्तविक ज्ञान हो सके।

बच्चों को छोटे-छोटे कारणों से विद्यालय से अवकाश न दिलावें क्योंकि इस स्थिति में पाठ का सूत्र टूट जाने से वह अगला पाठ नहीं समझ पाएगा। और पढ़ाई से जी चुराने लगेगा।

बच्चों को मनोरंजन का अवसर दीजिये। विकास की अवस्था को ध्यान में रखकर उनकी रुचि और आवश्यकतानुसार किताबों का चयन कर उन्हें पढ़ने के लिए दें। उन्हें सही ढंग से याद करना सिखाएँ। अत्यधिक कठोर और अत्यधिक लचीला—दोनों प्रकार का अनुशासन बच्चों को पढ़ाई से विमुख कर देता है। विद्यालय का कार्य डर से नहीं वरन् स्वेच्छा से करने की आदत उनमें डालें। अवकाश के दिनों में भी बच्चों में पढ़ने की आदत बनाये रखें। शैक्षिक निदेशन द्वारा बच्चे की योग्यता और क्षमता के अनुरूप पाठ्यक्रम के चुनाव में सहयोग प्रदान करें। बच्चों की अध्ययन सम्बन्धी कठिनाई को विद्यालय एवं परिवार से तथ्यों का संकलन कर साक्षात्कार एवं परामर्श द्वारा दूर किया जा सकता है। पढ़ाई में मन न लगने की समस्या को शिक्षक, अभिभावक और बच्चे—इन तीनों पक्षों के सहयोग से ही दूर किया जा सकता है।

❐

# बच्चे घर में भी पढ़ेंगे, लेकिन .......

घर में बच्चों की पढ़ाई सुचारु रूप से हो सके इसके लिए लगभग सभी माता-पिता परेशान रहते हैं। उनको अक्सर यह शिकायत रहती है कि स्कूल से पढ़कर घर आने के बाद बच्चे किताबों को छूते भी नहीं। माता-पिता प्रायः सोचते हैं कि उनके बच्चे न जाने अपनी पढ़ाई पूरी भी कर पाएँगे या नहीं।

प्रायः देखा गया है कि माता-पिता बच्चों को मात्र अपने ही नियमों के अनुसार ढालना चाहते हैं। जबकि स्थिति यह है कि पढ़ने के प्रति रुचि उनमें स्वाभाविक रूप से ही जागती है। ऐसे में अगर आप उन्हें मारपीट करके ही पढ़ाना चाहते हैं तो हो सकता है कि आपको इस काम में सफलता नहीं मिले।

कुछ ऐसे परिवार भी देखने में आते हैं जिनमें अभिभावक बच्चों को पढ़ाने के लिए थोड़ा भी समय नहीं निकाल पाते। उन्हें पढ़ाने के लिए घर पर अध्यापक की व्यवस्था करके वे अपनी जिम्मेदारी का अन्त समझ लेते हैं। इसके बाद चाहे अध्यापक उन्हें किसी भी तरीके से पढ़ाएँ, वे उस तरफ से पूर्ण निश्चिन्त हो जाते हैं।

घर पर पढ़ाने वाले शिक्षकों पर निर्भर हो जाने के कारण बच्चों की पढ़ने की तरफ रुचि बढ़ने के बजाय उनमें उदासीनता की भावना पैदा होती है, जिससे उनका मानसिक विकास रुक जाता है। अक्सर वे अपने शिक्षकों का विरोध करने लगते हैं। इस पर कभी-कभी उन्हें माँ-बाप की मार भी खानी पड़ती है। कई-कई अभिभावक तो अपने बच्चों को बरबस पढ़ने के लिए बाध्य करते हैं। नहीं पढ़ने पर उन्हें कमरों में बन्द कर देते हैं और तरह-तरह की यातनाएँ देते देखे गए हैं।

उक्त सभी बातों का प्रभाव यह होता है कि उनका बच्चा उनकी बात मानने की बजाय ढीठता अपना लेता है और आपत्तिजनक व्यवहार करने लगता है। कमरे में बन्द करके बाध्य करने जैसी यातनाओं के कारण तो उनके मन में प्रायः ऐसी दहशत बैठ जाती है जिससे वे अनेक बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं। या फिर अपना मानसिक

सन्तुलन खो बैठते हैं। चारों तरफ भय का वातावरण पाकर बच्चा कभी भी सन्तोषजनक व्यवहार नहीं कर सकता। अतः माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को प्यार और दुलार से समझा-बुझाकर पढ़ने का आग्रह करें।

बच्चों को घर में पढ़ाने के लिए इस बात पर ध्यान देना जरूरी है कि हमारा पढ़ाने का तरीका क्या है? बच्चों को पढ़ाने के लिए जरूरी है कि पहले आप अपनी बुद्धिमानी एवं सहनशक्तिपूर्ण सद्व्यवहार से उसका मन जीतें। उनके साथ अपने सम्बन्ध मधुर बनाने का प्रयत्न करें क्योंकि प्यार तथा स्नेह के जरिये, बच्चे सभी बातें जल्दी ग्रहण करते हैं।

बचपन में बुद्धि अपरिपक्व होती है। हर नई वस्तु के प्रति उसके मन में कौतूहल-सा रहता है। वह हर नई बात जानने को उत्सुक रहता है। छोटी उम्र से ही बच्चों में नियमपूर्वक हर काम को करने की आदत डाली जाए तो उनमें पढ़ने का भी अनुशासन आ जाएगा। अनुशासनात्मक जीवन जीने से वह घर पर शान्तिपूर्वक पढ़ने की कोशिश करेगा। अनुशासन के कारण अभिभावकों की कई परेशानियाँ हल हो जाएँगी।

❏

# सुन्दर लिखावट का अपना महत्त्व है

किसी मित्र या परिचित के पत्र में अथवा प्रार्थना-पत्र एवं निमन्त्रण-पत्र आदि में सुन्दर लिखावट (हस्तलिपि) को देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होती। महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा था कि उनकी लिखावट सुन्दर नहीं है अत: इसे वे अपनी अधूरी शिक्षा की निशानी मानते हैं। आज लगभग सारी दुनिया शिक्षित होने जा रही है और जीवन में लिखना-पढ़ना इतना फैल चुका है कि कार्यालयों में पत्र लिखने, व्यापार के मामलों में तथा दूर बैठे व्यक्तियों को सूचना देने आदि में लिखावट ही काम आती है।

सुन्दर लिखावट से हम अपनी बात को बिल्कुल स्पष्ट तौर पर समझा सकते हैं। अस्पष्ट और ऊबड़-खाबड़ लेखनी से उचित बात का सम्प्रेषण भी प्राय: सम्भव नहीं हो पाता है। सुन्दर लेखन को व्यक्तित्व का परिचायक भी समझा जाता है, जब किसी अजनबी अथवा जानकार व्यक्ति को हम अपनी बात पत्र के जरिए स्पष्ट करते हैं तो सुन्दर लेखन से लेखक के सद्व्यवहार और सुमधुर व्यक्तित्व का भी संकेत मिलता है।

सुन्दर लिखावट के लिए किसी उम्र अथवा व्यवसाय विशेष का बन्धन नहीं है। जहाँ कहीं भी अच्छा लिखा हुआ है या सुन्दर लेखन के जरिए बात कही गई है तो उसका अपना प्रभाव पड़ता है। यदि विद्यार्थी परीक्षा में सुन्दर हस्तलिपि लिखते हैं तो उन्हें उसके अतिरिक्त बोनस अंक मिलते हैं। जबकि अस्पष्ट और रफ लेखन मूल्यांकनकर्त्ता पर विपरीत प्रभाव डालता है।

सुन्दर लिखावट का अपना आकर्षण होता है और उसका पढ़ने वाले पर प्रभाव पड़ता है। नोटिस बोर्ड व विज्ञापन बोर्डों पर लिखे गए सुन्दर शब्द और वाक्य हमारा मन मोह लेते हैं। सुन्दर लिखावट के लिए एक बात जो ध्यान रखने योग्य है वह यह है कि अक्षरों के बीच तथा शब्दों के बीच उचित फासला रखा जाए अन्यथा संकुचित और एक-दूसरे से मिले हुए शब्द व अक्षर होने से अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

हाशिया छोड़कर सुन्दर लेखनी में प्रस्तुत की गई बात का अपना ही प्रभाव होता है। सुन्दर लिखावट कोई अचानक ही प्राप्त हो जाने वाली वस्तु नहीं है इसके लिए पर्याप्त अभ्यास करने की जरूरत पड़ती है। हम जितना साफ और सुन्दर लिखने का प्रयास करेंगे, हमारी लिखावट में सुधार आता जाएगा। इसके लिए जरूरी है कि अपने बच्चों को हमेशा साफ व स्पष्ट लिखने के लिए प्रेरित करें। एक नम्र भाषा में लिखा गया पत्र यदि सुपाठ्य लेखनी में भी है तो उसका दुगुना प्रभाव होता है।

सरकारी कार्यालयों व निजी उपक्रमों में पत्र-लेखन के लिए यों तो टाइपराइटर काम में लिए जाते हैं। लेकिन फिर भी फाइलों में टिप्पणी लिखने अथवा हांथ से पत्र लिखने में यदि सुलेख सुन्दर नहीं है तो उसका मजा किरकिरा हो जाएगा।

कई बार हम देखते हैं कि कार्यालयों में फाइलों पर जब कोई बाबू या लिपिक अस्पष्ट लेखनी लिखता है तो अधिकारी द्वारा उसे प्राय: डाँटा जाता है या उसकी हँसी उड़ाई जाती है। लेकिन जब सुन्दर लिखावट के साथ कोई प्रस्ताव या आदेश फाइल में लिखे जाते हैं तो अधिकारी बेहद प्रसन्न होते हैं। सुन्दर लेखनी वालों को इस बात का लाभ मिलता है कि उनकी तारीफ भी होती है और एक बार में ही उन्हें बिना परखे व्यवहारकुशल मान लिया जाता है। अत: लिखावट सुन्दर बन सके इस हेतु निरन्तर प्रयासरत रहना चाहिए।

❑

# अध्ययन से ज्ञान बढ़ता है

एक प्रसिद्ध विचारक का कथन है कि यदि आपके पास दो रुपए हैं तो एक रुपए से रोटी खरीदो और दूसरे से एक अच्छी पुस्तक। रोटी जीवन देती है और पुस्तक जीवन की कला सिखाती है। जीवन जिया जाता है ज्ञान से। ज्ञान बढ़ाने का सर्वोत्तम तरीका है—नियमित अध्ययन। नियमित अध्ययन से हम ग्रन्थों के सम्पर्क में रहते हैं। इससे हमारे अध्ययन की शृंखला टूटती नहीं है।

लेकिन अध्ययन की भी एक सीमा होती है। अधिकांश छात्र पूछते हैं कि उन्हें प्रतिदिन कितने घण्टे पढ़ना चाहिए। देखा जाए तो इसकी कोई निश्चित अवधि नहीं, कोई अटल नियम नहीं है। क्योंकि सभी छात्र-छात्राओं में विषय को समझने और ग्रहण करने की क्षमता अलग-अलग होती है। लाभ है भी ऐसे ही अध्ययन का, जिसका हम चिन्तन-मनन कर सकें। सो इतना ही अध्ययन किया जाना बेहतर है जिस तरह हम पर्याप्त चिन्तन कर सकें। सो इतना ही अध्ययन किया जाना बेहतर है जिस पर हम पर्याप्त चिन्तन कर सकें। अध्ययन और चिन्तन के अतिरिक्त माह में एक बार पठित सामग्री की पुनरावृत्ति अवश्य कर लेनी चाहिए। यदि लगे कि कोई बात समझ में नहीं आई है तो उसे बिना हृदयंगम किए आगे न बढ़े। अनेक विधाएँ ऐसी होती हैं जिनकी पुनरावृत्ति न की जाए तो शीघ्र ही विस्मृत हो जाती हैं तथा हमारा परिश्रम भी बेकार चला जाता है। हमारे अध्ययन, चिन्तन और पुनरावृत्ति में अगर पारिवारिक सदस्य साथ दे पाएँ तो वाह-वाही है ही। लेकिन यदि ऐसा न हो पाए तो अपने सहपाठी मित्रों के साथ समूह में बैठकर पढ़ा जा सकता है। इससे हमारा शंका-समाधान तो होता ही है, साथ ही शंका-समाधान और आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण पढ़ाई अच्छी हो जाती है। लेकिन हमें यह बात जरूर ध्यान में रखनी होगी कि यदि हमारी आदत जोर-जोर से पढ़ने की है, तो हमें अलग बैठकर पढ़ना चाहिए। हाँ, दूसरों के अनुभव का लाभ उठाने के लिए समूह में बैठकर चर्चा जरूर की जा सकती है।

अध्ययन करते समय बैठने की मुद्रा का भी अपना महत्त्व है। सुखासन में बैठकर ही पढ़ें। शयन मुद्रा में कभी न पढ़ें और शरीर पर कभी अनावश्यक दबाव न डालें। मेज-कुर्सी या स्टूल पर बैठकर पढ़ने से नींद आने लगे या ऊब पैदा हो तो कुछ देर घूमकर भी पढ़ा जा सकता है। नींद का प्रभाव यदि तेज हो तो सो जाना बेहतर है। अध्ययन के इस तरीके से हमारे ज्ञान की परिधि तो बढ़ेगी ही, साथ ही नियमित अध्ययन-मनन की कला का विकास भी होगा।

महात्मा गांधी ने कहा था—" अध्ययन हमारी आत्म-शुद्धि करता है तथा हमें ज्ञान के मार्ग की ओर प्रवृत्त करता है। हमें उनकी इस बात का स्मरण रखना चाहिए।

स्वतन्त्रता संग्राम के समय जब अंग्रेज सरकार द्वारा हमारे देशभक्तों को जेल में डाल दिया जाता था तो वे वहाँ अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें, इतिहास, पुराण, गीता व बाइबिल जैसी पुस्तकों का अध्ययन करके अपने ज्ञान में वृद्धि करते थे।

❐

# स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल

बच्चे घर-आँगन की बगिया के फूल होते हैं। इनकी सार-सँभाल पर ही घर की सुन्दरता और शक्ति निर्भर करती है। हमारे देश की आबादी का बड़ा भाग स्कूल जाने वाले बच्चों का है। उनके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने की आज बेहद जरूरत है। अगर हम इस ओर ध्यान नहीं देंगे तो हमारे देश की भावी पीढ़ी का यथोचित शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो पायेगा।

स्कूलों में बच्चों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी बड़ी सीमा तक स्कूल स्वास्थ्य सेवाओं को दी गई है, किन्तु विगत अर्से में देश की आबादी काफी बढ़ गई है। अतः ये सेवाएँ विशेष कारगर सिद्ध नहीं हो रही हैं। गाँव तथा शहरों में सर्वत्र नए-नए स्कूल खोले जा रहे हैं और यह समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। सरकारी तथा अन्य संस्थाओं या कमेटियों द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों आदि में स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित प्रबन्ध किये जाने अब बहुत जरूरी हो गये हैं। स्कूली बच्चों का स्वास्थ्य आज एक राष्ट्रव्यापी सवाल बनकर हमारे सामने है। अतः इस दिशा में शीघ्र ही प्रयास किये जाने आवश्यक हैं। यहाँ कुछ बातें दी जा रही हैं जो स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं :

स्कूलों की इमारतों के निर्माण हेतु ऐसी जगह चुनी जाये जहाँ विद्यार्थी आराम से पहुँच सके। यदि यह स्थान सड़कों या घनी जनसंख्या के निकट होगा तो पढ़ाई के समय बच्चों का मन स्थिर नहीं रह पायेगा। यह जगह कुछ ऊँची हो, जहाँ पानी के निकास का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। सामान्यतः एक हजार विद्यार्थियों के लिए एक एकड़ जमीन का होना आवश्यक माना गया है। इसके अतिरिक्त खुली हवा में बैठने, खेलने के लिये छाया वाले वृक्षों का होना भी जरूरी है। स्कूल के चारों ओर चार से छः फीट ऊँची दीवार बनायी जानी चाहिए।

छोटे बच्चों के लिये स्कूल की इमारत दो मंजिलों से ज्यादा ऊँची नहीं होनी चाहिये। अगर यह अंग्रेजी के अक्षर ई ...... के नमूने पर बनी हो तो अच्छा है।

कक्षाओं के सारे कमरों के आगे बरामदे बने हों और स्कूल में एक हाल (बड़ा कमरा) भी हो जो शेष इमारत से अलग हो। इस तरह स्कूल के कमरों में प्राकृतिक प्रकाश और वायु का आना-जाना रहेगा। आपत्ति के समय आवश्यकता पड़ने पर इस इमारत को जल्दी ही खाली कर सकने के प्रबन्ध भी होने चाहिये।

कमरे के भीतर विद्यार्थियों की संख्या दस से पन्द्रह वर्ग फुट फर्श प्रति विद्यार्थी के हिसाब से सही मानी गई है। कमरे की छत उसकी फर्श से कम-से-कम बारह फीट ऊँची होनी चाहिये। प्रत्येक कमरे में पच्चीस से लेकर सीटों का प्रबन्ध हो। सीटें लगाते समय कमरे के भीतर अगली तरफ कम-से-कम साढ़े सात फीट जगह अध्यापक के लिये रखी जानी चाहिये। सीटों की पिछली लाइन और कमरे की पिछली दीवार में एक फुट जगह और डेस्कों की लाइनों के भीतर डेढ़ फुट का रास्ता विद्यार्थियों के आने जाने के लिये रखना भी जरूरी है। कमरे का फर्श पक्का हो, जो कि सहज ही साफ किया जा सकता है।

स्कूल के कमरों में प्राकृतिक वायु के आने-जाने का अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये, ताकि छात्रों को शुद्ध वायु मिल सके और उनकी थकावट दूर हो सके। कमरे की दीवारों की खिड़कियाँ एक-दूसरी के आमने-सामने लगी हुई हों, ताकि इनके द्वारा बाहर से बिना रुकावट के ताजी और स्वच्छ वायु का आगमन होता रहे। खिड़कियों के साथ गन्दी वायु के बाहर निकलने के लिये रोशनदानों का होना जरूरी है। खिड़कियों और रोशनदानों की सहायता से सूर्य का प्रकाश कमरे के भीतर आ सकेगा जो बच्चों के लिये उपयोगी होगा।

गर्मियों में कमरों का तापमान स्थिर रखने के लिये बिजली के पंखे लगे हों तथा विज्ञान प्रयोगशाला से जहरीली गैसों के बाहर जाने हेतु बाहरी दीवार में छत के नजदीक वायु निकालने वाले पंखे लगे होने चाहिये।

विद्यार्थियों को दरी या टाट पर बिठाना एक पुराना तरीका है। गाँवों में प्रायः अब भी यह तरीका काम में लाया जाता है। निःसन्देह यह सस्ता पड़ता है। परन्तु यह विद्यार्थियों के स्वास्थ्य के लिये ठीक नहीं है। बच्चों की आयु के अनुसार डैस्क और सीटें बनबाई जायें ताकि विद्यार्थियों की आँखों पर दबाव न पड़े और दिमाग को थकावट मालूम न हो।

कक्षा के कमरे के सामने की दीवार पर मध्य में खुरदरे तल का ब्लैक-बोर्ड होना चाहिये। कक्षा को कमरे से बाहर लगाने के लिये एक जगह से उठाकर दूसरी जगह ले जाया जा सकने वाला "ब्लैक-बोर्ड" भी मौजूद होना चाहिये जो स्टेंड पर लगाया जा सके।

स्कूल के अधिकारियों को चाहिये कि वे स्कूल में विजिटिंग चिकित्सक की नियुक्ति का प्रबन्ध करें। विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिये समय-समय पर उनका डाक्टरी परीक्षण भी जरूरी है। स्कूल में एक चिकित्सा केन्द्र भी हो जिसमें "फर्स्ट एड बाक्स" का भी प्रबन्ध हो। संक्रामक रोग से पीड़ित विद्यार्थी पर स्कूल से प्रतिबन्ध लगाकर अवकाश दे दिया जाये।

स्कूली स्वास्थ्य सेवाओं का एक और भी महत्त्वपूर्ण भाग यह है कि विद्यार्थियों को छूत के रोगों के विषय में शिक्षा दी जाये। विद्यार्थियों को घरों और स्कूलों में स्वच्छता से रहने की भी प्रेरणा दी जानी उचित है। इनके लिये सिनेमा, पुतली का खेल और नाटक आदि का प्रबन्ध करके स्वास्थ्य विभाग के विशेषज्ञों के साथ विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकता है। पेम्फलेट, फोल्डर, पोस्टरों तथा प्रदर्शनी द्वारा भी बच्चों को स्वास्थ्य के सम्बन्ध में शिक्षित किया जाये। दीवारों पर स्वास्थ्य विषयक शिक्षाप्रद नारे लिखकर विद्यार्थियों को स्वास्थ-ज्ञान कराया जाना बेहतर होगा।

स्कूल में साफ और शुद्ध पीने वाले पानी का प्रबन्ध होना जरूरी है। कुओं के पानी से, नल या टूँटी के पानी को अच्छा माना गया है। इस प्रकार पानी के दूषित होने के अवसर कम हो सकते हैं। समय-समय पर पानी का रासायनिक परीक्षण भी होना चाहिये। अच्छा होगा अगर पीने का पानी सीधे पानी के स्रोत से लिया जाये।

शौचालय और पेशाबघरों को आवश्यकतानुसार मुख्य इमारत से कुछ दूरी पर निर्मित किया जाये। लड़कों और लड़कियों के लिये अलग-अलग स्थान बने होने चाहिये और उनके बाहर दीवारों पर चिन्ह लगे हों। इनकी संख्या विद्यार्थियों की संख्या पर निर्भर करती है।

# बच्चों को भय से मुक्त रखें

प्रबुद्ध मानवतावादी विचारक बर्ट्रेण्ड रसल ने कहा है कि बच्चों में यथासम्भव शक्ति, साहस, बुद्धि एवं संवेदनशीलता जैसे चारित्रिक गुणों का विकास करने की हर सम्भव कोशिश की जानी चाहिए। प्रत्येक माता-पिता यह चाहते भी हैं कि उनकी सन्तान इन गुणों से सम्पन्न हो, किन्तु बच्चों में उक्त गुणों का विकास तब तक सम्भव नहीं होता जब तक वे भय-मुक्त नहीं होते। अतः बच्चों को आरम्भ से ही भय-मुक्त रखना अत्यन्त आवश्यक है।

भय की मानव जीवन में विशेष कर बच्चों के जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बचपन ही वह समय है जब आदमी को भय की भूमिका से सही-सही परिचित कराया जा सकता है। भय बच्चों के स्वभाव में जाने-अनजाने किसी भी समय प्रवेश कर सकता है। अतः इस प्रवृत्ति के प्रति अभिभावकों को पूर्ण सावधान रहना चाहिए।

बाल-मन को भय किसी भी दिशा से आकर सहज ही घेर सकता है, जैसे—चूहा, मकड़ी, छिपकली, टिड्डी आदि जीव-जन्तुओं का भय; अँधेरे और एकान्त का भय; बड़े आकार वाले पशु जैसे हाथी, भैंस आदि का भय; यांत्रिक खिलौनों का भय अथवा छोटी-बड़ी परछाइयों का भय। भोंडी, तेज और अपरिचित आवाज का भय ऐसी किसी भी चीज से उत्पन्न हो सकता है जिसके बारे में बच्चे को पूरी तरह से परिचित नहीं कराया गया है।

प्राचीन जीव-विज्ञानी भय को मनुष्य की स्वाभाविक जन्मजात प्रवृत्ति मानते थे, किन्तु आधुनिक जीव-विज्ञानी इस तथ्य को नहीं मानते। उनका कहना है कि भय की प्रवृत्ति बच्चों में अधिकांशतः अभिभावक उत्पन्न करते हैं, जैसे अँधेरे से डरने की प्रवृत्ति बच्चे में जन्मजात नहीं होती, वह उसे अपने जीवनानुभव के दौरान अर्जित करता है। इसी प्रकार बिल्ली, बिलाव या ऊदबिलाव जैसे जानवरों से भी उसे अभिभावक ही डराते हैं। कभी-कभी तो बच्चे ऐसे जीवों से भी डरे होते हैं, जिन्हें उन्होंने कभी देखा ही नहीं होता।

बच्चे उन जन्तुओं, जीवों और वस्तुओं से भी डरने लगते हैं जिनसे उनके अभिभावक स्वयं डरे हुए होते हैं। अत: बच्चों को डरपोक तथा भीरू बनाने में माता-पिता व अभिभावकों की भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता।

डॉ. चार्म्स मिशेल ने अपनी पुस्तक "द चाइल्ड्स ऑफ एनीमल्स" में एक ओर जहाँ छोटे पशुओं में भय की प्रवृत्ति का विश्लेषण किया है वहीं मानव शिशु में भी भय के कारणों पर प्रकाश डाला है। उनके मतानुसार जीव-जन्तुओं में जन्म से भय की कोई प्रवृत्ति नहीं होती। वे अपनी प्रजाति के शत्रुओं से भी तब तक भय नहीं खाते जब तक उनके माता-पिता उन्हें उन शत्रुओं से डरना नहीं सिखाते।

मनोविज्ञानी बर्ट्रेण्ड रसल ने भी बच्चों में किए गए अपने प्रयोगों के आधार पर इस तथ्य को पुष्ट किया है कि बच्चों में भय का भाव उनके पालनकर्त्ताओं के सम्पर्क से ही आता है। अत: अभिभावकों को इस बात की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि उनके शिशु भय से मुक्त रहें।

बच्चों को भय से मुक्त रखने की दिशा में पहला प्रयास यह किया जाना चाहिए कि थोड़े-से रोने और जिद करने पर उन्हें अकारण और अनावश्यक रूप से डराने की कोशिश नहीं की जाये। प्राय: देखा गया है कि बच्चों के थोड़े से नटखटपन पर झल्ला कर अभिभावक उन्हें कुछ ऐसे जीव-जन्तुओं का नाम लेकर डराने-धमकाने लगते हैं जिन्हें उन्होंने कभी देखा ही नहीं होता। यह उचित नहीं। हालाँकि यह तो सम्भव है कि किसी विकराल और अनूठी शक्ल वाली वस्तु अचानक सामने पाकर बच्चा डर जाये किन्तु समझाने-बुझाने और वास्तविकता का बयान करने पर वह फिर उस वस्तु को देख कर घबराएगा नहीं।

बच्चा यदि किसी खिलौने, जीव-जन्तु या परछाईं आदि से डरने लगे तो भी उसे उन वस्तुओं तथा जीवों के बारे में बार-बार सही जानकारी दी जाए। उन्हें अँधेरे और एकान्त के भय से भी वस्तुस्थिति बताकर समझाने का प्रयास किया जाना चाहिए। बच्चों को हम वस्तुओं व जीवों को देखने का आदी बनाकर, उनके बारे में तथ्यों की जानकारी दे कर भी भय से मुक्त कर सकते हैं।

कुछ अभिभावक बच्चों को खेलने, कूदने और दौड़-भाग करने से भी रोकते हैं। ऐसा करने से हाथ-पांव टूट जाने का भय दिखाते हैं जिससे बच्चे डर जाते हैं। अत: इस दिशा में जरा भी प्रवृत्त नहीं हो पाते। यह सही है कि अनावश्यक कूद-

पसन्द और तोड़-फोड़ के कामों से उन्हें सचेत किया जाए तथा तटस्थता के साथ उनसे होने वाली हानियों से भी परिचित कराया जाए किन्तु ऐसा कुछ नहीं किया जाना चाहिए जिससे वे खेलकूद की प्रवृत्ति से ही डर जाएँ। इस दिशा में उन्हें भय-मुक्त रखना बहुत जरूरी है।

भय पैदा करने वाली झूठी, गढ़ी हुई और अस्वाभाविक बातें बच्चों के मन-मस्तिष्क पर सदैव उल्टा असर डालती हैं, उनके चारित्रिक विकास में बाधक बनती हैं। अतः अभिभावकों को उनसे ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए।

बच्चों में अपनी सुरक्षा के प्रति जागरूकता अवश्य पैदा की जानी चाहिए किन्तु सुरक्षा के नाम पर अकारण उत्पन्न किया गया भय उनके मनोबल को तोड़ देगा। उन्हें मानसिक रूप से बीमार बना देगा।

निन्दा या अपमान का भय दिखाकर भी यदि हम बच्चों को कुछ चीजों और कुछ कामों से दूर रखते हैं तो भी अच्छा नहीं करते। इन चीजों का आवरण भय की जड़ों को नहीं मिटा सकता। अतः उन्हें वास्तविकताओं से परिचित कराया जाए।

बच्चों को अकारण उत्पन्न भय से मुक्त रखा जाए, उनमें निडरता का भाव भरकर उन्हें साहसी बनाया जाए। यह सभी अभिभावकों का कर्त्तव्य है। भीरू बनाकर हम बच्चों का हित नहीं कर सकते। निडरता का रास्ता ही उन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से सबल बना सकता है।

❑

# खेलकूद जरूरी है

संसार के सभी बच्चे स्वभावतः नटखट होते हैं। अतः उनकी खेलकूद में विशेष रुचि होती है। खेलों के द्वारा ही उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है। बच्चे बचपन में जितना अधिक खेलते हैं, आगे चलकर उतने ही बुद्धिमान एवं अनुभवी बनते हैं। खेलों के माध्यम से ही बच्चे अपनी रुचियों का संकेत देते हैं। खेल-ही-खेल में वे डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक और वैज्ञानिक बन जाते हैं और अपनी रुचि की जानकारी देते रहते हैं। कभी वे गुड्डे-गुड़िया का विवाह रचाते हैं तो कभी पानी में नाव चलाते हैं। कभी वायुयान बनाकर उड़ाते हैं तो कभी जहाज तैराते हैं। वे ऐसे खेल भी खेलते हैं, जिनके लिए अपनी बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है, जैसे—शतरंज, कैरम इत्यादि। इन सभी प्रकार के खेलों से शारीरिक शक्ति भी बढ़ती है और बच्चे मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहते हैं।

अनेक बार यह देखने में आया है कि कुछ अभिभावक यह चाहते हैं कि उनके बच्चे थोड़ी देर भी न खेलें बल्कि हर समय पढ़ते रहें क्योंकि परीक्षा में उनके अंक बहुत कम आते हैं जबकि वास्तविकता यह होती है कि वे बच्चे पढ़ाई में इसीलिए कमजोर होते है कि उन्हें कुछ समय के लिए भी खेलने नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप किताबें उनके हाथ में होती हैं और दिलोदिमाग खेल के मैदान में। इस तरह वे मन-ही-मन कुण्ठित होने लगते हैं और खेलने के लिए मानसिक तौर पर छटपटाते रहते हैं। ऐसी हालत में वे कभी-कभी अपनी आवाज खो बैठते हैं या किसी लम्बी बीमारी के शिकार हो जाते हैं।

बच्चों को रोगों से छुटकारा दिलाने और उनकी सेहत बनाने के लिए अभिभावकों को चाहिये कि वे बच्चों को उनकी रुचि के अनुकूल खेल का सामान उपलब्ध कराने का प्रयत्न करें। खेल-ही-खेल में अपनी कल्पना के द्वारा वे खिलौनों अथवा उपलब्ध खेल की वस्तुओं के माध्यम से एक विचित्र संसार की सृष्टि करने में सक्षम हो जायेंगे।

अगर बच्चों को खेलने से रोका जायेगा तो हो सकता है क्रियाशील प्रवृत्तियों के अभाव के कारण वे अपने मन में उठने वाली उमंगों को प्रकट करने के लिए

विध्वंसात्मक रुख अपना लें। अपना ध्यान वे खेलों से हटाकर कप-प्लेट तथा घर के दूसरे सामान को तोड़ने-फोड़ने, फर्श पर हथौड़े मारने, दरवाजों को जोर-जोर से खोलने-बन्द करने में लगादें। अत: उनकी चेष्टाओं को सृजनात्मक मोड़ देने के लिए भी आवश्यक है कि उन्हें खेलने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

बच्चों की विकसित होती माँसपेशियाँ और बढ़ता हुआ शरीर अनेक प्रकार की चेष्टाओं की माँग करता है। यह माँग वे अन्य बालकों के साथ खेलकर पूरी करते हैं। जो शारीरिक शक्ति या ऊर्जा उनका शरीर संचित करता है। उसे वे खेलने में ही व्यय करते हैं। अच्छी खेल-सुविधाओं और साधनों के अभाव में बच्चों के बुरी संगत में पड़ जाने की भी सम्भावना होती है जिससे उनके चरित्र में अपराधी प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है। बच्चों को इस दोष से बचाने के लिए यह भी जरूरी है कि वे जिन बच्चों के साथ खेलते हैं, उनका भी ध्यान रखा जाय।

खेलों के द्वारा ही बालक का सर्वांगीण विकास होता है। उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है। शरीर सुदृढ़ होता है। खेलों के माध्यम से उसका शारीरिक व्यायाम हो जाता है और रक्त-संचार सामान्य बना रहता है। साथ ही माँसपेशियाँ मजबूत बनती हैं। मानसिक एवं वैचारिक दृष्टि से भी वे स्वस्थ रहते हैं और इस प्रकार वे दूसरों के विचार तथा उनका अनुभव ग्रहण करने में समर्थ होते हैं। इसी से उनमें आत्मविश्वास, सहानुभूति एवं सहयोग की भावना जन्म लेती है।

छोटी उम्र में बच्चे प्राय: अकेले ही खेलना पसन्द करते हैं। जैसे-जैसे वे बड़े होने लगते हैं, उनके अन्दर समूह बनाकर खेलने की भावना घर करने लगती है और वे फुटबाल, वालीबॉल, हॉकी, क्रिकेट जैसे खेलों में रुचि लेने लगते हैं। ऐसा करने से उनमें सहयोग की भावना उत्पन्न होती है।

बच्चे जब थोड़ी देर खेल लेते हैं तो फिर तनावों और दिनभर की थकान एवं ऊब से छुटकारा पाकर नये उत्साह के साथ पढ़ने-लिखने के लिए बैठ जाते हैं। खेलों के माध्यम से ही वे अनेक प्रश्नों के उत्तर पा लेते हैं। अत: बच्चों को सभी दृष्टि से स्वस्थ एवं नीरोग रखने के लिए आवश्यक है कि उन्हें पढ़ने-लिखने के बाद थोड़ी देर तक खेलने दिया जाय। उन्हें खेलने से रोकने का अर्थ है उनके व्यक्तित्व के विकास में बाधक बनना। खेल ही वस्तुत: बच्चों के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। अत: उन्हें खेलने के लिए सदैव प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

❐

# आदर्श खेल-भावना क्या है?

स्वतंत्र भारत के दिवंगत प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू खिलाड़ियों को सदैव खेल-भावना से खेलने की सलाह देते थे। उन्होंने खेल के मैदान में पालन किए जाने वाले अनुशासन पर सदा जोर दिया। किन्तु आज हम देखते हैं कि खेल के मैदानों से खेल भावना का लोप होता जा रहा है। आखिर खिलाड़ियों ने उसे क्यों भुला दिया है? वस्तुतः खेल भावना क्या है? खेल-भावना की प्रमुख बातों से सभी खिलाड़ियों को परिचित होना चाहिए।

अंग्रेजी में एक शब्द प्रचलित है—'स्पोर्ट्समैन स्पिरिट'। खेल-भावना यद्यपि इसका शाब्दिक अर्थ तो नहीं है, तथापि इसका तात्पर्य यही है कि खेल के मैदान में खिलाड़ी को अनुशासनबद्ध रहकर खेल-भावना से काम लेना चाहिए। खिलाड़ियों की सहनशक्ति, अनुशासन और धैर्य को समाज में सर्वत्र अनुकरणीय बताया गया है।

खेल-कूद आज हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुका है। विश्व भर में दिन-रात कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी खेल का आयोजन होता रहता है। दूर-संचार के सभी माध्यम, जैसे—रेडियो, टी.वी. आदि इन खेलों के विवरण देते रहते हैं। 'स्टार टी.वी.' और 'प्राइम स्पोर्ट्स' जैसे टी.वी. चैनल तो दिनभर खेल-कूद सम्बन्धी प्रसारण करते हैं। भारत में भी खेल-कूद विषयक प्रसारणों पर पर्याप्त ध्यान केन्द्रित किया गया है।

खेल-कूद के इतने प्रसार के बावजूद खेल के मैदान से खेल-भावना का लोप एक बड़ी चिन्ता का विषय है। हम आए दिन सुनते हैं कि अमुक खिलाड़ी ने 'रेफरी' अथवा 'एम्पायर' की बात नहीं मानी, उसके आदेश और निर्देश का उल्लंघन किया। अमुक खिलाड़ी ने नशे की गोलियाँ खाकर फलाँ दौड़ को जीत लिया। अमुक खेल में गलत तरीके अपनाकर जीत हासिल कर ली आदि। छोटी-मोटी जगह की बात छोड़िये जब विश्वस्तर के खेलों में खिलाड़ी ऐसा करते हैं तो अत्यन्त दुःख होता है।

मुक्केबाजी, फुटबाल आदि खेलों में 'फाउल' करना तो आम बात हो गई है। लम्बी दौड़ के नतीजे भी ऐसे ही आ रहे हैं। ये सब बातें खेल-भावना के विपरीत हैं।

एक खिलाड़ी जब खेल के मैदान में उतरता है तो उससे यह आशा की जाती है कि वह खेल के सभी नियमों का पालन करता हुआ पूर्ण अनुशासन से रहेगा यानि वह खेल-भावना के साथ खेलेगा। खेल-भावना अथवा खेल के मैदान में वांछित अनुशासन के प्रमुख बिन्दु कौनसे हैं, आइये उन पर विचार करें।

1. खिलाड़ी जब खेल के मैदान में उतरे तो उसे बाकायदा निर्धारित ड्रेस (गणवेश) में होना चाहिए।

2. मैदान में खेलते हुए अथवा पानी में तैरते हुए वह सम्बन्धित खेल के जो भी नियम-उपनियम हैं, उनको किसी भी क्षण न भुलाते हुए उनकी अनुपालना में किंचित् भी कोताही नहीं बरतेगा अर्थात् नियमों को नहीं तोड़ेगा। या गलत आचरण करना सर्वथा वर्जित है।

3. प्रत्येक खिलाड़ी से यह आशा की जाती है कि वह 'रेफरी', निर्णायक अथवा 'एम्पायर' के सभी निर्देशों का (चाहे वे भूल से भी दे दिए गए हों) पूर्णतः पालन करेगा। खिलाड़ी निर्णायक की किसी भी आज्ञा को मानने से इन्कार नहीं कर सकेगा।

4. किसी भी खिलाड़ी को खेल के मैदान में किसी भी प्रकार का नशा करके नहीं आना चाहिए। नशे के जरिये अपने प्रतिद्वन्द्वी को हराना एक अपराध है तथा खेल-नियमों को तोड़ना दूसरा। अतः नशे की गोलियाँ आदि खाना खिलाड़ी के लिए त्याज्य है।

5. किसी भी खेल में विजय हासिल करना अच्छी बात है किन्तु अपनी विजय के उन्माद में हारी हुई टीम अथवा हारे हुए खिलाड़ी के प्रति हीन-भावना रखना अथवा अपशब्द कहकर उसे अपमानित करने का अधिकार किसी को नहीं है, अतः ऐसे में स्वयं पर नियंत्रण रखना चाहिए। खिलाड़ियों से यह आशा की जाती है कि वे हारे हुए खिलाड़ियों से हाथ मिलाएँ तथा पीठ ठोंककर उनका उत्साह बढ़ाएँ।

खिलाड़ियों के अच्छे प्रदर्शन में दर्शकों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। दर्शक जब किसी खिलाड़ी को अच्छा खेलते हुए देखते हैं तो तालियों की गड़गड़ाहट से उसका उत्साह बढ़ाते हैं और जब वह निराशाजनक प्रदर्शन करता है तो अपनी भी निराशा प्रकट करते हैं। खेल का यह भी आदर्श है कि खिलाड़ी पूरे अभ्यास के बाद मैदान में प्रदर्शन करने उतरे ताकि वह दर्शकों की प्रशंसा बटोर सके।

खेल के मैदान में खेल रहे खिलाड़ी का सदैव यह प्रयास रहना चाहिए कि वह अपने दर्शकों को और खेल-प्रेमियों को अपने निर्मल एवं स्वच्छ खेल से प्रसन्न करे।

प्रत्येक आदर्श खिलाड़ी का यह नैतिक दायित्व है कि वह खेल-भावना से खेलकर जनता के सामने उदाहरण प्रस्तुत करे। विश्व में आज तक जितने बड़े और प्रसिद्ध खिलाड़ी हुए हैं, उन्होंने सदैव खेल के नियमों का अनुशासन के साथ पालन करके ही लोगों के दिलों में अपनी जगह बनायी है। खेल-कूद में रुचि रखने वालों को उनसे खेल-भावना की आदर्श शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

❐

# कल्पना-शक्ति का विकास

बच्चों में विकास की अपार शक्ति होती है जिसको पहचानकर माता-पिता यदि मनोवैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग करने लगें तो निश्चित ही वे अपने बच्चों के जीवन में प्रगति और उन्नति का प्रकाश ला सकते हैं।

आपने देखा होगा, जिस समय आप कोई कार्य कर रहे होते हैं तो प्रायः बच्चे भी आपका हाथ बँटाने की चेष्टा करते हुए पाए जाते हैं। किसी-न-किसी रूप में वे स्वयं उस कार्य को करने लगते हैं, ऐसे में अक्सर माता-पिता बच्चे को वह कार्य करने से रोक देते हैं तथा अनेकों बार तो उसे डाँट भी देते हैं। यह कह कर कि उसके चोट लग जाएगी अथवा यह उसकी गन्दी आदत है आदि। लेकिन ऐसा करके माता-पिता बच्चे के मानसिक विकास में गतिरोध पैदा कर देते हैं चूँकि बच्चे के अन्दर यह सब कुछ सुनने से अनेकों कुण्ठाएँ घर करने लगती है।

आपने यह भी देखा होगा कि बच्चे माता-पिता से तरह-तरह के सवाल करते हैं। समझदार माता-पिता ऐसे सारे सवालों का बच्चे की बुद्धि के अनुरूप उत्तर देते चले जाते हैं। ऐसा करने से बच्चे की बुद्धि और उसके विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। वह संकीर्णता से बचता हुआ ज्ञान-वृद्धि के मार्ग पर अग्रसर होने लगता है।

विभिन्न जिज्ञासाओं के जाहिर करने पर यदि हम बच्चों को झिड़कने या फटकारने लगेंगे तो उसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर उल्टा पड़ेगा। वह सोचने लगेगा कि माता-पिता से कुछ भी पूछना कोई अपराध करने के समान है। ऐसे में जो कल्पनाएँ एवं संवेदनाएँ उसके मन के अन्दर स्वभावतः उठती हैं उनका दमन होना शुरू हो जाता है। बच्चा अनेकों दृष्टियों से दूसरे अच्छे बच्चों के मुकाबले पिछड़ता चला जाता है। हर बार ऐसा होने से भावनात्मक असन्तुलन उसके जीवन का अंग बनने लग जाता है। ऐसे माहौल में अनेकों बार तो बच्चा मनोवैज्ञानिक रूप से बीमार तक हो जाता है। यह स्थिति कतई अच्छी और सन्तोषप्रद नहीं है।

जिम्मेदार माता–पिता के रूप में हमें चाहिए कि बच्चों की स्वाभाविक कल्पनाओं तथा संवेदनाओं को समझें, उन्हें उभारने का हर सम्भव प्रयास करें। उनकी शक्ति को सही दिशा में मोड़ें। उनके लिये ऐसे–ऐसे उपकरण जुटाएँ जिनके माध्यम से वे अपने मन की कल्पनाओं को बेहतर अर्थ दे सकें। जीवन में भावनात्मक स्थिरता ला सकें। उपेक्षित या प्रताड़ित बच्चा कभी स्वस्थ कल्पनाओं को अपने मन में जन्म नहीं दे सकता।

युवा अथवा अधेड़ व्यक्ति अपनी किसी भी कल्पना को मूर्त रूप देने में कुछ समय ले लेता है लेकिन बच्चा अधिक समय नहीं लेता। बच्चा अपने देखे हुए माहौल के अनुरूप तत्काल नई–नई कल्पनाएँ करता चला जाता है और समर्थ होने पर उन्हें मूर्त रूप देने का प्रयास करता है।

अभिभावक होने के नाते हमारी यह जिम्मेदारी हो जाती है कि बच्चों के सामने हम सदा सर्वोत्तम उदाहरण ही रखें ताकि उन्हें सदा सर्वोत्तम कल्पनाएँ करने और उन्हें विकसित करने का मौका मिले। स्मरण रखना चाहिए कि गन्दे और घृणित माहौल में बच्चों की कल्पनाएँ भी घृणित हो जाती हैं जबकि साफ–सुथरे माहौल में जिन कल्पनाओं का जन्म होता है वे साफ–सुथरी होती हैं।

बच्चों के मस्तिष्क में अच्छी कल्पनाओं को जन्म देने की दिशा में अच्छी कहानियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं। जैसे–जैसे बच्चे अच्छी कहानियों को पढ़ते या सुनते हैं उसी के अनुरूप वे अपने मस्तिष्क में विभिन्न कल्पनाओं को विकसित करते चले जाते हैं। जिस समय वे किसी क्रूर राजा की कहानी सुन रहे होते हैं तो मन–ही–मन यह कल्पना करने लगते हैं कि क्रूर और दुष्ट राजा समाप्त हो जाये तो अच्छा हो। इसी प्रकार जब वे किसी आदर्श पुरुष की कहानी सुनते हैं तो स्वतः ही उनके अन्तर्मन में यह भाव जागने लगता है कि वे भी उस आदर्श पुरुष के समान बन सकें। तात्पर्य यह है कि विविध कहानियों के माध्यम से हम बच्चों में जैसा भी चाहें वैसा ही भावात्मक विकास ला सकते हैं। उनके व्यक्तित्व को जैसी भी दिशा देना चाहें, दे सकते हैं। विभिन्न प्रयासों के परिणामस्वरूप हमें यही करना चाहिए कि हम बच्चों को अच्छा सोचने और अच्छा व्यवहार करने का मौका दें। उन्हें अच्छी प्रेरणाएँ दें। उनमें मानवीय गुण तथा संवेदनाएँ भरें जिनके द्वारा उनका जीवन महानता तथा दिव्य मानवता की ओर अग्रसर हो।

❐

# बच्चों को विनोदप्रिय बनाएँ

कहते हैं—जो आदमी हर समय प्रसन्न रहता है और सबके साथ हँसी-खुशी का व्यवहार करता है वह स्वस्थ और दीर्घायु होता है। उसके मस्तिष्क में तनाव नहीं रहता। तनाव आदमी के शरीर को क्षीण बना देता है।

विनोदप्रियता का गुण बच्चों में आरम्भिक समझ के साथ ही विकसित किया जाना चाहिए। ऐसा करने से बड़े होने पर वे हँसमुख, स्वस्थ और आनन्द का विस्तार करने वाले नागरिक बन सकेंगे।

बच्चों के विनोदी होने का यह मतलब कदापि नहीं है कि वे दूसरों की खिल्ली उड़ाएँ या मजाक बनाएँ। सही अर्थ में विनोदी या विनोदप्रिय वह होता है जो सही समय में स्वस्थ हास्य एवं व्यंग्य की छटा बिखेर सके और अपनी असफलताओं पर भी जी खोलकर हँस सके। जीवन के विनोदी पक्ष को देख सकने की क्षमता उत्पन्न करने से ही बालक दूसरों की दृष्टि में प्रशंसनीय बन सकता है।

बच्चों को विनोदी बनाने के लिए सबसे आवश्यक गुण जो उनमें विकसित करना होता है वह है उनका आत्मविश्वास। यह विश्वास बड़ों के प्रोत्साहन और प्रशंसा से आ सकता है। यदि कक्षा में तेज चलने वाला किसी समय द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होता है, तो उसके माता-पिता उसे डाँटते-फटकारते हैं, 'तुम तो बड़े निकम्मे हो, कुछ भी नहीं कर पाते। तुम्हें तो प्रथम आना चाहिए था। अरुण को देखो, वह बाजी मार ले गया।'

ऐसे आक्षेपों से बालक का रहा-सहा आत्मविश्वास भी चूर-चूर होकर रह जाता है। साथ ही उसे अपने सहपाठी से भी ईर्ष्या हो जाती है। बचपन से ऐसी भावना उत्पन्न होने पर वह जीवनपर्यन्त दूसरों को फलता-फूलता देखकर ईर्ष्या की आग में झुलसता रहता है। अतः ऐसी स्थिति में कुछ बातें विनोद में कहना ही अधिक उचित होता है, जैसे—'कोई बात नहीं, लगता है, इस बार तुम्हारा भाग्य कहीं सो गया और परीक्षा के दिनों में वह खरगोश की भाँति (कछुए और खरगोश की कहानी वाले)

जागना ही भूल गया। तुम्हारे मित्र अरुण ने मैदान मार लिया। आखिर तुम्हारा मित्र ही तो है। खैर अगली बार तुम भाग्य को सोने न देना।' इस प्रकार बालक को प्रोत्साहन भी मिलता है और वह दूसरों के गुणों की प्रशंसा करना भी सीख लेता है।

सच तो यह है कि जीवन का पथ सदा गुलाब के फूलों से भरा नहीं होता। उसमें काँटे भी मिलते हैं। यदि हमने बालक को विषमताओं को हँसते हुए झेलना सिखाया है तो यह भावना उसके आगे के जीवन को विनोद से भर देगी।

बालक को विनोदी बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि आप उससे मित्रवत् व्यवहार करें और कभी-कभी उसके साथ विनोद भी करें। यदि दो बच्चे परस्पर झगड़ रहे हैं तो उनका निपटारा भी विनोद के रूप में ही करें। जैसे—'अरे देखो वो दो बिल्लियाँ लड़ रही हैं। भई, हम बन्दर बनकर तुम्हारा फैसला करेंगे।' बस, लड़ाई खेल में बदल गई और बच्चा भी ऐसे अवसर पर विनोद करता है तो आप क्रोधित न हों, वरन् उसके विनोद में हिस्सा लें।

कुछ लोग जीवन में बहुत बड़ा यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाए रहते हैं उनके लिए तो छोटी-छोटी बात भी गम्भीर होती है। ऐसे लोग न तो स्वयं ही विनोदी होते हैं और न वे बच्चों को ही विनोदी बना सकते हैं। उदाहरण के लिए उस दिन संजय की माँ नौकरानी पर बुरी तरह बरस रही थीं। संजय दौड़ा हुआ गया और एक गिलास पानी लेकर माँ के पास आकर बोला—'मम्मी, आप डाँटते-डाँटते थक गई होंगी। जरा पानी पी लीजिये।'

छोटा मुँह बड़ी बात! बालक की इस धृष्टता को माँ कैसे सहन कर सकती थी? पानी का गिलास दूर फेंककर वह संजय को दो-चार तमाचे जड़ कर बोलीं, 'खबरदार, जो तुमने बड़ों से ऐसा व्यवहार किया। हाथ जोड़ो, माफी माँगो और कान पकड़ कर उठो-बैठो।' बेचारा बालक सहमकर चुप हो गया।

बालक को विनोदी बनाने के लिए उसकी कल्पनाशक्ति को विकसित करने का अवसर देना भी बहुत आवश्यक है। साधारण-सी बात को भी कल्पना के सहारे कुछ असाधारण ढंग से कहना चाहिए कि सुनने वाला भी आनन्द लिए बिना न रह सके। यह बात की सफलता है। उदाहरण के लिए अगर आपका बालक आज कुछ अधिक देर तक सो गया है। आप उसे झकझोर कर जगाती हैं और खरी-खोटी सुनाती हैं, इससे बालक का मूड और भी बिगड़ जाएगा और वह न उठने की जिद करता

रहेगा। अच्छा यह होगा कि माँ उससे विनोद करती हुई कहे, 'अरे, आज तो तुम घोड़े बेच कर सोए हो। बाहर देखो, कितनी ठंड है। मालूम होता है कि हम उत्तरी ध्रुव में आ गए हैं।'

इसी प्रकार यदि जोरों की वर्षा हो रही है और बालक का मन स्कूल जाने का नहीं है तो हम कह सकते हैं, 'भई, आज तो मूसलाधार बारिश हो रही है। लगता है, हमें दफ्तर और तुम्हें स्कूल या तो तैर कर या नाव पर चढ़कर जाना होगा।'

बस, वर्षा की कठिनाई विनोद में बदल गई। बालक वर्षा की झड़ी का आनन्द लेते हुए स्कूल पहुँच जाएगा और वहाँ अपने साथियों से हँस-हँसकर पूँछेगा—'यार, तुम आज तैरकर आए हो या नाव पर चढ़कर?' इस प्रकार स्कूल जाने की कठिनाई भी विनोद के जरिए आनन्द में बदल जाएगी।

बालक की विनोदशीलता एवं सही कल्पना को विकसित करने के लिए उसे ऐसे अभिनय करने का भी अवसर देना चाहिए, जिसमें विनोद का पुट हो। इसी प्रकार मजेदार कहानियों, कविताओं और चुटकुलों द्वारा बालक की विनोदप्रियता का विकास किया जा सकता है।

आपके बच्चे विनोदप्रिय होंगे तो आस-पास के लोग परिचित, मित्र तथा परिवार के लोग भी उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न होंगे तथा उनकी प्रशंसा करेंगे।

❑

# बाल-पुस्तकालय कैसे स्थापित करें?

हमारे देश में वयस्कों के लिये तो पुस्तकालयों की सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती हैं, लेकिन बालकों को यह सुविधा स्कूल में ही मिल पाती है और वह भी नाममात्र की। यह एक बड़ी समस्या है, जिसका निदान अति आवश्यक है। वयस्कों और बालकों के बौद्धिक विकास में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। बच्चों की प्रवृत्ति जिज्ञासु होती है। बच्चे कहानियों के साथ चित्र देखना चाहते हैं, महापुरुषों के प्रेरक प्रसंग पढ़ना चाहते हैं तथा देश के गौरवशाली अतीत और वीर पुरुषों के शौर्य की कहानियाँ पढ़ना उन्हें रुचिकर लगता है। लेकिन उनकी रुचि की पुस्तकों का सार्वजनिक पुस्तकालयों में प्राय: अभाव होता है।

•बाल-पाठकों के लिये घर ही सबसे बड़ा पुस्तकालय होता है। जिन घरों के माता-पिता, भाई-बहनों में पढ़ने की आदत होती है, उन घरों के बच्चे यह आदत आसानी से ग्रहण कर लेते हैं। बच्चों में ज्ञानवर्धक पुस्तकें व समाचार-पत्र पढ़ने की आदत डालना प्रत्येक माता-पिता का कर्त्तव्य है। अगर उनमें यह रुचि एक बार विकसित हो गयी तो जीवनपर्यन्त चलेगी।

पुस्तकों द्वारा बच्चे बिना किसी की सहायता के अनेक नई बातों को स्वयं ही सीख सकते हैं। इसीलिये पुस्तकों को सच्चा मित्र कहा गया है। बच्चों के ज्ञान को विकसित करने का अवसर प्रदान करने में सक्षम होता है—बाल-पुस्तकालय।

बाल-पुस्तकालय की प्रत्येक सामग्री इस प्रकार से व्यवस्थित करनी चाहिये कि बच्चे उसकी ओर स्वयं आकर्षित हों। पुस्तकें, समाचार-पत्र, रिकॉर्ड की गई नर्सरी पोइम्स, देश-प्रेम से सम्बन्धित गाने आदि इस प्रकार रखे जाएँ कि प्रत्येक बाल-पाठक अपनी मनपसन्द सामग्री आसानी से पाने में सफल हो सके।

बाल-पुस्तकालय की व्यवस्था बिल्कुल आधुनिक ढंग से की जानी चाहिए। यहाँ का अध्ययन-कक्ष इतना बड़ा हो, जहाँ बीस-पच्चीस बच्चे एक साथ बैठकर अध्ययन कर सकें। बाल-पुस्तकालय का फर्नीचर भी विशिष्ट होना चाहिये। यहाँ

काउण्टर, मेज–कुर्सी, आलमारी की लम्बाई बच्चों की सुविधा के अनुसार रखी जानी चाहिये।

बाल–पुस्तकालय में ऐसी पुस्तकें एकत्र करनी चाहिये जिन्हें बच्चे आसानी से समझ सकें और उनका आनन्द उठा सकें। पुस्तकें अधिकतर सचित्र होनी चाहिए। इस हेतु पुस्तकें चुनते समय इन बातों पर विशेष ध्यान रखा जाना चाहिये। बाल–पुस्तकें बड़े और आकर्षक अक्षर वाली हों तो उन्हें सुविधा रहेगी।

बच्चे कहानियाँ अधिक पसन्द करते हैं। इसका कारण कदाचित यह है कि बचपन में उन्हें घर में दादी, नानी, माँ आदि से कहानियाँ ही सुनने को मिलती हैं। कुछ दिनों बाद उनकी यह आदत बन जाती है। इसीलिये हर विषय में कहानियों की पुस्तकों को प्रमुखता देना उचित रहता है। इन पुस्तकों का चयन बड़ी सूझबूझ से करना चाहिये। कहानियाँ ऐसी न हों जो मात्र कल्पना की उड़ान और झूठी तर्क–भूमि पर आधारित हों। ऐसी पुस्तकें कदापि नहीं खरीदें जिनमें चोरी, डकैती, जादू–टोने, भूत–प्रेत, अन्धविश्वास इत्यादि के किस्से हों।

बच्चों के बौद्धिक व क्रियात्मक विकास में सहायक, उनमें कुछ कर गुजरने की लगन पैदा करने वाली पुस्तकों को प्रमुखता दी जानी चाहिये। नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों, भौगोलिक खोजों के वृत्तान्तों, वीर पुरुषों की शौर्यगाथाओं, पशु–पक्षियों, पेड़–पौधों आदि से सम्बन्धित रोचक, बोधगम्य शैली में लिखी गयी पुस्तकें बच्चों के लिये विशेष लाभप्रद होंगी। संसार का अमर साहित्य जो अनुवाद के कारण अब प्रायः सुलभ है, बच्चों के लिए अवश्य मँगवाया जाना चाहिये।

विदेशी वातावरण और समस्याओं को आधार बनाकर लिखी गयी पुस्तकें पढ़ने से बच्चों में अन्य देशों की सभ्यता–संस्कृति, रीति–रिवाज आदि का ज्ञान बढ़ता है। उनमें विश्वबन्धुत्व की भावना दृढ़ होती है। उत्तम पुस्तकों के माध्यम से हम बच्चों में आदर्श नागरिक व भविष्य के प्रति आशावान होने का बीजारोपण कर सकते हैं।

बाल–पुस्तकालय का पुस्तकालयाध्यक्ष प्रशिक्षित, मधुर व्यवहार वाला और शील–स्वभाव की सामान्य बातों से परिचित हो तो बाल–पुस्तकालय निश्चित ही सफल होंगे। पुस्तकालय की ओर से समय–समय पर वाद–विवाद प्रतियोगिता, संगीत प्रतियोगिता, व्याख्यान, कहानी–पाठ आदि का आयोजन किया जाना चाहिये और इसमें भाग लेने के लिये बाल–पाठकों को प्रोत्साहित करते रहना चाहिये। इससे

बच्चे पुस्तकालय की ओर आकर्षित होंगे। कभी–कभी वहाँ फिल्म शो के भी आयोजन किये जायें। ऐसा करते समय बच्चों की आयु का ध्यान रखना आवश्यक है। इस प्रकार के आयोजन माह में एक बार अवश्य हों।

जिन बच्चों की बुद्धि अपरिपक्व है, उनके लिये बाल–पुस्तकालय नवीन मार्ग दिखा सकता है। जब उम्र और बुद्धि अविकसित होती है तो बच्चों को किसी भी दिशा में आसानी से मोड़ा जा सकता है। बाल–पुस्तकालय उनके समय का सदुपयोग करने व उन्हें सही रास्ता दिखाने में सफल होगा। उसके माध्यम से उनकी ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को रचनात्मक प्रवृत्तियों के रूप में बदला जा सकेगा। इस प्रकार बाल–पुस्तकालय अगली पीढ़ी का सुधार कर राष्ट्र की उन्नति में सहायक हो सकता है।

बाल–पुस्तकालय ऐसे स्थान पर खोलना चाहिये जहाँ बच्चे बिना किसी परेशानी के आसानी से पहुँच सकें। अगर बाल पुस्तकालय शहर से दूर होगा तो हर बालक उतनी दूर जाने में हिचकिचायेगा। अभिभावकों को चाहिये कि वे इस सम्बन्ध में जनमत तैयार करें। राज्य सरकारों तथा समाजसेवी संस्थाओं को भी इस ओर ध्यान देना चाहिये।

❐

# टी.वी. और बच्चों का विकास

बच्चों के कोमल हृदय पर किसी भी देखी-सुनी घटना का प्रभाव तत्काल और बहुत गहरा पड़ता है। इसीलिए वे टी.वी. पर जो कुछ देखते हैं, उसे अपनी बाल बुद्धि के अनुसार स्वीकार कर लेते हैं। टी.वी. उनके लिए एक जादू का पिटारा है। अपने कभी बच्चों को टी.वी. देखते हुए गौर से देखा है? ऐसा लगता है, जैसे सारी दुनिया इसी डिब्बे में सिमट कर आ गई है—उनकी अपलक एकाग्रता इस बात को दर्शाती है कि जो कुछ वे देख रहे होते हैं वह उनके मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ रहा है। बच्चे टी.वी. पर जो कुछ देखते हैं उसे सच मानकर वे अपने जीवन में उसकी परछाईं ढूँढते हैं और उसका अन्धानुकरण करने लग जाते हैं। किन्तु अनुकरण करते समय वे नन्हे अबोध इस बात को नहीं समझ पाते कि कौनसी बात उनके लिए सही है, कौनसी गलत। जीवन का हर रहस्य वे तुरन्त जान लेना चाहते हैं। सत्य और असत्य, कल्पना और यथार्थ के बीच का अन्तर न समझ पाने के कारण वे दिग्भ्रमित हो जाते हैं। टी.वी. का आकर्षण कई बार उन्हें अपने परिजनों से भी दूर कर देता है।

सरकारी दफ्तर में काम करने वाले दिनेश मिश्र बताते हैं कि, 'पिछले दिनों मैं ऑफिस से आता था, तो बच्चे मुझे घेर लेते थे, किन्तु अब तो वे हर दिन टी.वी. से चिपके रहते हैं। मैं ही उन्हें बुलाऊँ, तो टी.वी. के पास से हटते हैं।'

प्राइवेट सेवा कर रहे रवीन्द्र कुमार जैसी ही शिकायतें अन्य अभिभावकों की भी हैं—'बच्चे आजकल स्कूल से आते ही जल्दी-जल्दी 'होमवर्क' कर डालते हैं, ताकि टी.वी. के प्रोग्राम छूट न जाएँ। टी.वी. उनके लिए एक नशा-सा होता जा रहा है।'

कई घरों में तो रात का खाना भी टी.वी. के सामने ही खाया जाता है। दिन भर के बाद एक यही समय होता था जब बच्चों से अभिभावकों की बातें होती थी। उनकी दिनभर की बातें, लेकिन अब सब चुपचाप टी.वी. पर आँखें गड़ाए ही बच्चे

खाना खा लेते हैं।'एक प्रोग्राम भी कोई छोड़ना नहीं चाहता। आखिर भोजन कब किया जाय?' एक अन्य अभिभावक का कहना है।

रातों में मम्मी-पापा के साथ कहानी-सुनने कहने की प्रथा तो आजकल समाप्त ही समझिये। देर रात में आने वाले प्रोग्राम भी बच्चे जिद करके देखना चाहते हैं। बड़ों के सामने अब दो ही रास्ते हैं। या तो वे रोज झगड़ा करके स्वयं भी टी.वी. नहीं देखें और जल्दी सो जाएँ अथवा रात को देर तक बच्चों को भी जगने दें।

एक ओर जहाँ माता-पिता परेशान हैं तो दूसरी ओर शिक्षकों को भी परेशानी है। वे कहते हैं, टी.वी. देखने से बच्चों की बुद्धि-क्षमता कम होती जा रही है। जो बातें वे स्वयं अपनी बुद्धि से समझने की प्रक्रिया करते थे, वह अब नहीं करते। अक्सर देखा गया है कि अस्सी-नब्बे प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले बच्चे भी जब टी.वी. देखने की लत में पड़ जाते हैं और उनके अंक पचास-साठ प्रतिशत तक गिर जाते हैं। रात को देर तक जब बच्चे जागते रहेंगे तो सुबह पढ़ाई में मन लगेगा भी कैसे?

## अभिभावक क्या करें?

टी.वी. की मुसीबत देखकर हम कह उठते हैं, 'टी.वी. न ही लिया होता तो अच्छा था।' लेकिन उलझन और हताशा से समस्या तो नहीं सुलझेगी। वास्तव में सुनियोजित ढंग से टी.वी. का इस्तेमाल किया जाए, तो उसका पूरा-पूरा फायदा उठाया जा सकता है। टी.वी. परिवार को और करीब लाने व जोड़ने का माध्यम भी बन सकता है। नीचे दिए सुझावों पर अमल कीजिएगा तो आपके व आपके बच्चों के लिए टी.वी. एक वरदान सिद्ध हो सकता है :

1. टी.वी. देखने का समय व नियम निश्चित कर लें और उस पर स्वयं भी काफी कड़ाई से कायम रहें। समय निश्चित करते समय बच्चों की राय भी लें। हर कार्यक्रम उनके लिए देखना उचित नहीं। यह बात उन्हें समझाएँ। उनकी पढ़ाई, खेल व आराम के लिए समय-सूची में व्यवस्था रखें। स्वयं खेल-कूद में रुचि दिखाएँ व स्वयं भी निर्धारित समय के अलावा टी.वी. न चलाएँ। बच्चों को समझाएँ कि टी.वी. केवल एक मनोरंजन का साधन है, मनोरंजन तब ही हो सकता है, जब पढ़ने का काम पूरा हो जाए व अन्य आवश्यक काम हो जाएँ।

2. मनोरंजन करने वाले कार्यक्रमों को अधिक महत्त्व न देकर, ज्ञानवर्द्धक कार्यक्रमों को महत्त्व दें। स्वयं इन प्रोग्रामों में रुचि लें, उनकी प्रशंसा करें। उनकी रोचक बातें बच्चों को समझाएँ व बच्चों के प्रश्न पूछने पर उनका समाधान करें।

किसी शौक या रुचि से सम्बन्धित कार्यक्रम हो, तो उसे अवश्य दिखाएँ फिर उस शौक को बच्चे को स्वयं विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करें।

3. यदि टी.वी. देखते समय कुछ ऐसा दिखाई दे, जो बच्चों के लिए हानिकारक हो सकता है तो किसी बहाने से टी.वी. बन्द कर दें। या तो बिजली का 'मेन स्विच' ऑफ कर दें या किसी अन्य रोचक प्रसंग को शुरू करके टी.वी. थोड़ी देर के लिए बन्द कर दें। बच्चों से बहस करके टी.वी. बन्द न करें, अन्यथा वे अड़ जाएँगे व उनमें रोष की भावना पैदा होगी।

बच्चों में जिज्ञासा व कौतुक इतना होता है कि जो मना किया जाए वही करने के लिए वे लालायित रहते हैं। यदि आप किसी कारणवश टी.वी. बन्द न कर पाएँ, तो उक्त कार्यक्रम का मजाक बनाकर उसकी परोक्ष रूप से निन्दा करें, ताकि बच्चों पर उसका प्रभाव न पड़ने पाए।

4. जब बच्चे कार्यक्रम देख रहे हों, तो उन्हें गौर से देखें। यदि उन पर किसी विशेष भावुक दृश्य या मारधाड़ के दृश्य का अधिक प्रभाव पड़ रहा हो, तो उस कार्यक्रम के बारे में बाद में उनसे बात अवश्य करें। उनके मन में घुमड़ती आशंकाओं और प्रश्नों का सहज ढंग से उत्तर दें। कल्पना और यथार्थ का अन्तर बातों-बातों में, हँसी-हँसी में समझायें। कभी उसके बारे में लेक्चर न दें।

5. जब किसी भूमिका, व्यक्तित्व या घटना का प्रभाव बच्चों पर डालना हो तो उनकी प्रशंसा कीजिए। उदाहरण के लिए—'वाह कितनी साहसी लड़की है, कितनी समझदारी से काम ले रही है—दूसरी होती तो रो-रो कर रह जाती!' आदि।

6. खेल के कार्यक्रमों में बच्चों की रुचि बढ़ाएँ। जो खेल दिखाया जा रहा हो उनके बारे में बताएँ और खिलाड़ियों के बारे में भी। रोचक बाते बताएँ। जाहिर है यह सब बताने के लिए स्वयं आपको भी जानकारी हासिल करनी होगी।

7. विज्ञापन के प्रति बच्चों के आकर्षण को सीमित करें। कभी किसी विज्ञापित वस्तु को लाकर देखें—विज्ञापन में उसके जितने गुण गाए गए थे, वे गुण उनमें हैं या नहीं, बच्चों को भी बताएँ और उनकी राय भी पूछें।

8. अंग्रेजी व हिन्दी में भी कार्यक्रमों के दौरान प्रयोग किये गये शब्दों की सूची बनाने के लिए प्रोत्साहित करें। इसका एक खेल बना लें—कितने नये शब्द एक

सप्ताह में बच्चे इकट्ठा कर सकते हैं। फिर उन शब्दों को इस्तेमाल करने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित करें। एक अकेले बच्चे को या दो बहुत छोटे बच्चों को अकेले टी.वी. देखने के लिए कभी उत्साहित न करें।

जैसे-जैसे वैज्ञानिक विकास हो रहा है, टी.वी. के माध्यम से बच्चों को बहुत कुछ सीखने को मिल रहा है। टी.वी. मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा का भी एक बहुत बड़ा साधन सिद्ध हुआ है। टी.वी. आज साक्षरता प्रसार, स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता, समाचारों से आम आदमी को अवगत कराने आदि के साथ-साथ कम्प्यूटर प्रणाली की जटिल शिक्षा देने में भी समर्थ है। जो बच्चे शिक्षा ग्रहण करने की दृष्टि से टी.वी. देखते हैं वे उससे बहुत कुछ ग्रहण कर सकते हैं। अभिभावक उन्हें इस हेतु प्रेरित करें।

उक्त बातों का ध्यान रखेंगे तो टी.वी. आपको आनन्द देगा और बच्चों के विकास में सहायक सिद्ध होगा।

❑

# टी.वी. का बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव

बच्चों की आँखें उनके शरीर के अन्य अंगों के समान ही कोमल होती हैं। उन्हें बड़े यत्न से बचाना पड़ता है। जिस प्रकार अधिक काम करने से शरीर के अन्य अंग थक जाते हैं, उसी प्रकार आँखों को भी जब अपनी शक्ति से अधिक काम करना पड़ता है तो वह थक जाती हैं। बच्चे जब अधिक समय तक दूरदर्शन देखते हैं तो उनकी आँखों की माँसपेशियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आँखें जब सामान्य से अधिक प्रकाश के दायरे में आती हैं तो वह उस प्रकाश को झेलने से इन्कार कर देती हैं और पलक झपकते ही बन्द भी हो जाती हैं। पर यदि बच्चे दूरदर्शन पर टकटकी लगा कर अधिक समय तक देखते रहें तो आँखों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः बच्चे जहाँ टी.वी. देखते हैं उस कमरे का साइज दूरदर्शन के पर्दे से बीस गुणा अधिक होना चाहिये। आजकल घरों में छोटे कमरे होते हैं। अतः दूरदर्शन सैट भी छोटे साइज का लेना ही उचित रहता है। प्रायः अधिक बड़े पर्दे वाला दूरदर्शन बड़े कमरों, स्कूलों और सामुदायिक केन्द्रों में ही लगाया जाता है।

प्रायः देखने में आया है कि यदि एक कमरे में जब अधिक लोग बैठकर दूरदर्शन देख रहे होते हैं तो बच्चों को फर्श पर नीचे बैठा दिया जाता है, जिससे उन्हें सिर ऊपर उठाकर अथवा आँखों के तिरछे कोण से कार्यक्रम देखना पड़ता है। आँखों पर इसका प्रभाव ठीक नहीं पड़ता। दूरदर्शन कार्यक्रम देखते हुए दर्शक और उपकरण को एक ही स्तर पर होना चाहिए, जिससे आँखों पर किसी प्रकार का भी अतिरिक्त दबाव न पड़े।

दूरदर्शन कार्यक्रम देखते समय कमरे में अन्धेरा रखना हानिकारक है, क्योंकि दूरदर्शन के प्रकाश और वातावरण के अन्धकार के कारण जो विपरीत प्रभाव उत्पन्न होगा, उससे आँखों पर अधिक दबाव पड़ेगा। अतः इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि दूरदर्शन के उपकरण के प्रकाश के अतिरिक्त भी कमरे में प्रकाश होना चाहिए। यह प्रकाश न तो दूरदर्शन के पर्दे पर दिखाई देना चाहिये और न ही दर्शक की आँखों पर पड़ना चाहिये। कमरे में इस प्रकार रोशनी की जानी चाहिये

कि बल्ब आदि दिखाई न दें और कमरा प्रकाशमान भी रहे। सामान्यत: दूरदर्शन देखने से थकान या असुविधा जैसी स्थिति उत्पन्न नहीं होनी चाहिये, परन्तु यदि लगातार ऐसी असुविधा हो तो निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी चाहिये—

उपकरण–दोष अथवा दृष्टि–दोष होने पर फोकस, प्रकाश, वैषम्य, कम्पन, पढ़ने में अस्पष्टता अथवा पर्दे पर चित्र का हिलना आदि इस तरह की गड़बड़ी होने पर तुरन्त किसी अच्छे मैकेनिक से उपकरण की जाँच करवाई जानी चाहिए। यदि दूरदर्शन के इन दोषों का निराकरण शीघ्र ही नहीं करवाया जायेगा तो आँखों को लगातार असुविधा की स्थिति से गुजरना पड़ेगा और रोशनी कम होती जायेगी।

किसी योग्य मैकेनिक द्वारा यदि यह बता दिया जाये कि दूरदर्शन सैट में कोई दोष नहीं है तो ऐसी स्थिति में किसी नेत्र रोग विशेषज्ञ से तुरन्त ही परामर्श किया जाना चाहिये।

पाँच वर्ष की आयु तक बच्चों की आँखें प्लास्टिक स्टेज से गुजर रही होती हैं। दृष्टिपूर्णता और माँसपेशियों की शक्ति की दृष्टि से उनका पूर्ण विकास पाँच वर्ष की आयु तक ही हो पाता है। अत: छोटे बच्चों को दृष्टि–थकान से बचाना चाहिये। जो बच्चे अबोध हैं, उन्हें तो दूरदर्शन दिखाने का कोई लाभ ही नहीं है। पर जो उन कार्यक्रमों को देखकर मनोरंजन कर पाते हैं अथवा कुछ सीख पाते हैं, उस आयु के बच्चों को भी जहाँ तक सम्भव हो, केवल बच्चों के कार्यक्रम ही दिखाने चाहिये।

काला–सफेद अथवा रंगीन दूरदर्शन आँखों पर लगभग एक जैसा ही प्रभाव डालता है। दूरदर्शन का स्क्रीन प्लास्टिक का होता है, अत: उसे किसी अत्यधिक नरम कपड़े से ही साफ करना चाहिये, ताकि उस पर खरोंच आदि न पड़ें। खरोंच लगने पर स्क्रीन को तुरन्त ही बदलवा लेना चाहिये, ताकि आँखों पर जोर न पड़े। त्रि–आयामी टी.वी. जो विशेष चश्मे के द्वारा देखे जाते हैं, उनका प्रभाव भी आँखों पर अच्छा नहीं पड़ता है।

टी.वी. उपकरण खराब होने पर जब मैकेनिक उसे ठीक कर रहा हो तो उसके पर्दे के पीछे जाकर या आस–पास से उसके प्रकाश को न देखें, क्योंकि इस प्रकाश से जो किरणें निकलती हैं, वह आँखों के लिये हानिकारक हैं। उसके जो भाग बाहर रख कर ठीक किये जा रहे हों उनका प्रकाश भी आँखों के लिये उचित नहीं है। एक्स–रे दोष के इस विकीर्ण प्रभाव से बचने के लिये दूरदर्शन से 6 से 10 फीट की दूरी पर रहना चाहिये।

दूरदर्शन उपकरण बनाने वाले औद्योगिक केन्द्र का दायित्व है कि वह सैट को बाजार में क्रय हेतु लाने से पूर्व उसकी पूरी जाँच करें साथ ही जब दूरदर्शन घर में लगा दिया जाता है, तो उसके क्रय करने वाले की जिम्मेदारी है कि वह उपकरण की सावाधिक जाँच करवाये।

जो लोग 'कान्टेक्ट लैंस' का प्रयोग करते हैं उन्हें टी.वी. के लिये चश्मे का प्रयोग करना चाहिये। विशेषत: यदि दूरदर्शन कार्यक्रम देखते समय कमरे में अधिक लोग बैठे हों तो 'कान्टेक्ट लैंस' से आँखों को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन नहीं मिल पाती है।

## कुछ अन्य सुरक्षा नियम

❖ दूरदर्शन एक जटिल विद्युत उपकरण है। इसमें उच्च वोल्टेज होती है। अत: इसे अन्य सामान्य विद्युत उपकरणों, जैसे—बिजली के हीटर, आयरन, ओवन आदि के समान, मरम्मत के लिये नहीं खोल लेना चाहिये। इसमें शीशे की ट्यूब होती है, उच्च वोल्टेज के कारण वह टूट कर आँखों अथवा शरीर के किसी अन्य भाग को घायल कर सकती है।

❖ 'इन्डोर ऐंटिना' को टी.वी. बन्द करने के पश्चात् सीधी स्थिति में कर देना चाहिए, ताकि कमरे की झाड़-पोंछ करते समय उसकी तिरछी की गई पैनी नोक आँखों को या शरीर के किसी अन्य भाग को घायल न करदे।

❖ टी.वी. का कैबिनेट लेते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये कि वह किसी धातु अथवा किसी चमकीली सतह का न बना हो। हल्के और बिना चमक वाले कैबिनेट अधिक उपयुक्त होते हैं, क्योंकि इनकी चमक आँखों को नुकसान नहीं पहुँचा पाती।

❖ टी.वी. कभी भी लगातार नहीं देखा जाना चाहिए। वयस्क लोग तो बीच-बीच में घर के अन्य कार्यों के लिये टी.वी. के सामने से हट भी जाते हैं। अत: उनकी दृष्टि प्रकाश के सतत् प्रभाव से बच जाती है, पर बच्चे टी.वी. के सामने से हटना ही नहीं चाहते। इसलिए उन्हें समझाया जाए कि दो कार्यक्रमों के बीच में दिये गये विज्ञापनों के समय वह अपनी आँखें बन्द करके केवल आवाज ही सुनें ताकि आँखों को विश्राम मिल सके।

❖ बच्चे यदि सीमित कार्यक्रम ही देखें और विश्राम की अवधि का पूरा ध्यान रखें तो अधिक उपयुक्त होगा। छोटे बच्चे यदि एक दिन में एक डेढ़ घण्टा ही टी.वी. देखें तो भी ठीक रहेगा। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाये कि रंगीन अथवा धुँधले शीशे का चश्मा लगाकर टी.वी. कभी न देखा जाये।

❖ आँखों में किसी प्रकार की भी असुविधा होने पर योग्य डॉक्टर से तुरन्त परामर्श लेना चाहिये। सामान्यत: नेत्र रोग विशेषज्ञ द्वारा वयस्कों की आँखों की जाँच पाँच वर्ष में एक बार और बच्चों की वर्ष में एक बार करवायी जानी चाहिए।

कहते हैं कि विज्ञान द्वारा प्रदत्त सुविधाएँ जितनी लाभप्रद हैं, यदि उनका उपयोग सावधानी के साथ नहीं किया जाए तो वे खतरनाक भी सिद्ध हो सकती हैं। टी.वी. के बारे में भी यही बात लागू होती है। वह हमारा मनोरंजन भी करता है और हमें शिक्षित भी बनाता है। किन्तु उपर्युक्त बातों को ध्यान में नहीं रखा गया तो हमारे शरीर व स्वास्थ्य को हानि भी पहुँचा सकता है।

❒

# अवसर का लाभ उठाएँ

समय की सही पहचान करके अवसरों का पूरा-पूरा फायदा उठाना ही सफल जीवन की कुँजी है। असफल होने का भय वहीं तक रहता है जब तक हम जोखिम उठाने से डरते रहते हैं। उपलब्धियों, अनुभवों तथा सुखों को प्राप्त करने के लिए जरूरी है कि हम जोखिम उठाने से नहीं डरें। हमें भय से नहीं, साहस से अपने जीवन को संचालित करना चाहिए।

मनोवांछित सफलता पाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को परिश्रम करना पड़ता है। परिश्रम भी तब ही हो पाता है जब अपने ध्येयपूर्ति की लगन लगी हो। अक्सर लोग अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति केवल इसलिए नहीं पूरी कर पाते कि उनकी लगन व उनकी इच्छाशक्ति की तीव्रता में कमी होती है। जितनी तीव्रता से कोई कुछ चाहेगा, उतना ही गहन परिश्रम उसके लिए करना होगा। हर बड़ी व्यावसायिक संस्था में हर वर्ष कुछ अफसरों को ऊँचे पदों के लिए चुना जाता है। चुने हुए अफसरों में से अधिकांश स्वयं अतिरिक्त प्रशिक्षण नहीं लेना चाहते और अपनी पदोन्नति के लिए मना कर देते हैं। जो वास्तव में महत्त्वाकांक्षी होते हैं व परिश्रम से डरते नहीं, वे जीत जाते हैं। कुछ लोग अपनी पदोन्नति के लिए अन्य तरीके अपनाते हैं, अफसरों की चाटुकारिता या उनके सामने अपना दुखड़ा रोकर या कुछ ऐसे ही तरीकों से पदोन्नति लेना चाहते हैं कि काम बन जाए। प्रगति करके आगे बढ़ने वाले रोते-घिघियाते नहीं। चुपचाप परिश्रम करते रहते हैं। अपने को सक्षम बनाने में जुटे रहते हैं। जब किसी वरिष्ठ पद पर नियुक्ति का समय आता है, तो वह उसकी जिम्मेदारियाँ निभाने के लिये पहले से ही तैयार रहते हैं।

अवसरों का लाभ वही उठा सकते हैं जो उनका लाभ उठाने के लिए स्वयं को तैयार रखते हैं। इसका उदाहरण एक प्रेरणादायक छोटी-सी कहानी से मिलता है।

नन्द किशोर नामक युवक जब केवल पन्द्रह साल का था, तब उसके पिता की मृत्यु हो गई। अपनी व अपनी विधवा माँ की जीविका के लिए स्कूल के बाद

वह पढ़ाई छोड़ कर काम में लग गया। अपने मित्रों को ऊँची शिक्षा के अवसर मिलते देख कर वह हताश नहीं हुआ, न ही ईर्ष्या से कुण्ठाग्रस्त हुआ और न ही अपने दुर्भाग्य पर बैठा रोता रहा। टी.वी. के काम में उसे सदा से ही दिलचस्पी थी। उसको सीखने की किताबें उसने खरीद लीं और हर समय अपने पास उसकी जानकारी की किताबें रखे रहता। जब भी समय मिलता, वह उसकी तकनीकी बातें याद करता रहता। वह अपना ज्ञान बढ़ाता गया और इस तरह धीरे-धीरे एक मामूली से काम से अपनी लगन, मेहनत व तैयारी के बल पर वह देश की एक जानी-मानी टी.वी. बनाने वाली संस्था में एक वरिष्ठ अधिकारी के पद पर नियुक्ति पा गया। उसकी सफलता का रहस्य यही था कि आगे बढ़ने के अवसर सामने आने पर वह उनका पूरा लाभ उठाने के लिये पहले से ही स्वयं को तैयार कर चुका था।

अक्सर मनोवांछित अवसर हमारे सामने होता है, किन्तु उसको हम पहचान नहीं पाते। अपने जीवन की छिपी सम्भावनाओं को पहचानने के लिये वास्तव में अपने सोचने के ढंग को नकारात्मक न बनाकर स्वीकारात्मक बनाना चाहिए, एक बहुत रोचक कहानी इस कथन को बड़ी अच्छी तरह स्पष्ट करती है।

रामप्रसाद एक धनी खेतिहर था। वह अपने जीवन से बहुत असन्तुष्ट था, क्योंकि उसकी महत्त्वाकांक्षा ऐश और आराम की जिन्दगी जीने की थी। इसलिए वह अपने खेत बेचकर हीरों की खान की तलाश में निकल पड़ा। दुनिया भर में घूमते-घूमते उसका सारा धन स्वाहा हो गया। हीरे की खान तो मिली नहीं, उसकी खोज में रामप्रसाद ने अपनी जिन्दगी गरीबी और बेचारगी तक लाकर खड़ी कर दी। अन्त में कुछ चीथड़ों और कुछ सपनों मे लिपटा वह दुनिया से चल बसा।

उधर जिस आदमी ने रामप्रसाद से उसके खेत खरीदे थे, उसने वहाँ काम शुरू कर दिया। खेतों के बीच में एक छोटा-सा नाला जाता था। एक दिन काम करते-करते उसने उस नाले की मिट्टी में चमकदार वस्तु देखी। उसे निकालने पर वह एक असाधारण इन्द्रधनुषीय चमक वाला पत्थर निकला। अपने एक मित्र से जाँच कराने पर उसका अनुमान सही निकला। वह पत्थर एक हीरा था। फिर क्या था। दोनों ने मिलकर नाले की तह को छान डाला और भी अनेक कीमती हीरे ढूँढ निकाले। ऐसे चमत्कारी ढंग से गोलकुण्डा की प्रसिद्ध हीरे की खान की खोज हुई। इसी खान से आगे चलकर विश्व प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा निकाला गया।

कैसी विडम्बना थी। जिन हीरों की खोज में रामप्रसाद सारी दुनिया में मारा-मारा फिरता रहा, वही हीरे उसी के खेतों में छिपे हुए थे।

कभी-कभी एक छोटा-सा गुण भी बड़े कारोबार की प्रेरणा की नींव बन सकता है। एक गरीब बढ़ई था। ठेकेदार द्वारा उसे काम से निकाल दिया गया। चिन्ता में डूबा वह बैठे-बैठे लकड़ी के टुकड़े को अपनी पैनी छुरी से खरोंचने लगा। देखते-ही-देखते उसके हाथों की कला ने उस लकड़ी के टुकड़ें को एक सुन्दर, मनोहारी खिलौने का रूप दे दिया। उस खिलौने के लिए जब उसके बच्चों में झगड़ा होने लगा तो उसने एक नया खिलौना बना दिया। दूसरे खिलौने को बनाते समय ही उसको ख्याल आया कि क्यों न वह खिलौने बना कर ही अपनी आजीविका चलाए। वह सामान्य बढ़ई का काम छोड़ कर खिलौने बनाने और बनवाने लगा। धीरे-धीरे उसके छोटे-से गुण के आधार पर एक खिलौना फैक्टरी की स्थापना हो गई और एक गरीब बढ़ई मेहनत, साहस व प्रेरणा के बल पर एक सफल धनी व्यापारी बन बैठा।

अवसर ईश्वर द्वारा दिया गया वरदान नहीं, बल्कि अवसर सदैव हमारे आस-पास ही बिखरे रहते हैं। सोचिए, कहीं आप उन्हें खो तो नहीं रहे हैं। स्वयं को सतर्क बनाकर जीवन को और सफल एवं सम्पन्न बनाया जा सकता है। ये अवसर के हीरे उन्हीं के काम के हैं, जिनमें उन्हें पहचानने की शक्ति, लाभ उठाने की क्षमता और परिश्रम करने की लगन व कठिनाइयों से जूझने का साहस हो। हमें किसी भी अवस्था में कभी भी मन में निराशा नहीं लानी चाहिए। पक्के इरादे के साथ लगकर ही हम सफलता प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम अवसर को पहचानकर उसे पकड़ें और सफलता के लिए प्रयत्न शुरू कर दें।

❐

# बच्चों के लिए कैसा साहित्य रचें?

साधारणतया बाल–साहित्य की परिभाषा करते समय कहा जाता है किजो साहित्य बच्चों का हित करता हो वही बाल साहित्य है। यह परिभाषा भावनात्मक दृष्टि से सही हो सकती है, किन्तु बाल–साहित्य के स्वरूप को पूर्ण स्पष्ट करने वाली नहीं है। अतः बाल–साहित्य की परिभाषा यदि यों की जाय तो युक्तिसंगत होगी—"बच्चों की उम्र, उनकी वय का विशेष ध्यान रखकर लिखी गई यथार्थिक भूमि की वे आदर्श रचनाएँ जिनकी भाषा सहज–सरल अर्थात् बच्चों की शब्द–सामर्थ्य के अनुकूल हो, जिनमें किसी प्रकार की क्लिष्टता अथवा अनावश्यक विस्तार न हो और जिनमें विषय का प्रतिपादन अत्यन्त समीचीन ढंग से हुआ हो—बाल–सहित्य की कोटि में आएँगी।"

जब हम बाल–साहित्य शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारे सम्मुख उस साहित्य का समय चित्र उपस्थित हो जाता है, जिसके मोटे तौर पर हम निम्नांकित तीन भाग कर सकते हैं—

1. वे रचनाएँ जो चार से सात वर्ष के बच्चों के लिये लिखी जावें। इन्हें हम अपनी सुविधा के लिए शिशु–साहित्य की श्रेणी में रख सकते हैं।
2. ऐसी रचनाएँ जो सात वर्ष से ग्यारह वर्ष के बच्चों के लिये लिखी जावें। ये रचनाएँ सही अर्थ में बाल–साहित्य के नाम से पुकारी जानी चाहिए।
3. ग्यारह वर्ष से सोलह वर्ष के बच्चों के लिये लिखा जाने वाला साहित्य किशोर–साहित्य है। इसका क्षेत्र विस्तृत और व्यापक है।

बाल–मनोविज्ञान के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिशुओं (चार से सात वर्ष) की योग्यता, आवश्यकता, जिज्ञासा अथवा अपेक्षा बच्चों (सात से ग्यारह वर्ष) के मुकाबले कम तथा भिन्न होगी। एक शिशु के लिये गाई जाने वाली लोरी एक बच्चे के लिये पर्याप्त नहीं होगी। वह लोरी सुनकर शिशु की भाँति नींद

नहीं ले सकेगा। इसी प्रकार किशोरावस्था (ग्यारह से सोलह वर्ष) को प्राप्त करके बालक का भावलोक तथा कल्पनालोक अधिक विकास पा चुका होता है, अत: बच्चों की अपेक्षा वह रचनाओं में अधिक कल्पना, साहसिक वर्णन, अन्वेषण तथा रोमांच की माँग करेगा।

शिशुगण विशेषत: भावनात्मक साहित्य अर्थात् गीत, कविता, कहानी, नाटिका, उपन्यास आदि में ही विशेष रुचि ले सकता है, और वह भी तब जब उसमें सहज-ग्राह्य शब्दों का प्रयोग हुआ हो, मनोरंजन का गहरा पुट हो और बात बहुत सरलता से कही गई हो। मानसिक और दैनिक—दोनों दृष्टियों से एक शिशु का संसार सीमित होता है। अपने सीमित परिवेश में आने वाली वस्तुओं को ही वह खास तौर से पहचानता है, अत: वह उसी रचना का स्वागत विशेष रूप से करेगा जिसमें उसे अपने भाव-संसार, अनुभव तथा कल्पना से अद्‌भुत वस्तुओं का वर्णन किया गया हो।

शिशु-साहित्य के सर्जक का दायित्व दोहरा होता है। एक ओर उसे शिशु के सामान्य भावलोक एवं कल्पना शक्ति का ध्यान रखना पड़ता है, जिसके अन्तर्गत वह तथ्यों को सहज और शिशु के अनुभव जगत के आधार पर सीधे रूप में प्रस्तुत करता है तथा दूसरी ओर उसे शब्दों का, भाषा-शैली का भी पूरा-पूरा ख्याल रखना पड़ता है। इस दृष्टि से सर्जक को अपनी बात अत्यन्त कोमल तरीके से तथा सरल शब्दों की आवृत्ति के माध्यम से कहनी पड़ती है।

शिशु द्वारा देखे-पहचाने गए पशु-पक्षियों को पात्र बनाकर भी लेखक अपनी बात कह सकता है, किन्तु ऐसा तभी सम्भव हो सकेगा जब उसके मस्तिष्क में इन पशु-पक्षियों का कोई खास खाका पहले से बना हुआ हो।

गेय रचनाओं के माध्यम से जो उसे रटाई भी जा सकती हैं शिशु अनेक ज्ञान की बातें ग्रहण कर सकता है। शिशु-गीतों का प्रचलन इस दृष्टि से बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। इनमें लय होती है, प्रचलित मुहावरे भी होते हैं और मनोरंजन का मनोहारी पुट भी मिलता है। शिशुओं की जुबान पर ये शीघ्र चढ़ जाते हैं। शिशु-गीत का एक उदाहरण आगे देखिये—

**राशन के दफ्तर में जाकर,**<br>
**बोले बन्दर लाल—**

"भाव चढ़ गए इतने—
जिसकी मिलती नहीं मिसाल।
अब चोरी से भोजन पाना—
हुआ बहुत ही 'हार्ड'
जल्दी से बनवादो भाई,
मेरा राशन कार्ड!"

सात से ग्यारह वर्ष की उम्र में बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर देखी-सुनी या पढ़ी बात का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया शिशुओं की अपेक्षा शीघ्र होती है। शिशुओं की अपेक्षा उनका शब्द-ज्ञान, कल्पना-शक्ति, आवश्यकता और अपेक्षा सभी कुछ अधिक होती है। अत: परोक्ष रूप से उन्हें यदि उपदेशात्मक बात भी कही जायेगी तो उसका प्रभाव भी वे सहज ही ग्रहण कर लेंगे। अत: बच्चों के लिए साहित्य उपलब्ध कराते समय उपयोगी साहित्य यानी विज्ञान, इतिहास, गवेषण तथा भूगोल आदि विषयों की सामान्य जानकारी का भी समावेश किया जा सकता है।

बच्चों के लिये—पद्य एवं गद्य—दोनों विधाओं में लिखा जाना या पुस्तकें उपलब्ध कराना उचित सिद्ध हो सकता है। हालाँकि बच्चे भी सरल भाषा में लिखी गई संक्षिप्त या छोटी रचना को ही पसन्द करेंगे; क्लिष्ट अथवा कठिन शब्दों का प्रयोग रचना को अग्राह्य बना सकता है।

प्रत्येक बाल-रचना मनोरंजन से भरपूर होनी चाहिए, उसमें बालक की जिज्ञासा को बनाये रखने की क्षमता हो ताकि उसकी आगे पढ़ने की इच्छा बनी रहे। रचना में वातावरण की सृष्टि बाल-मनोविज्ञान की मूलभूत मान्यताओं के अनुकूल की गई हो। ज्ञानवर्धक और आदर्श स्थापना का मांगलिक उद्देश्य तो प्रत्येक बाल-रचना में निहित होना ही चाहिए।

चित्रांकन तथा दृश्य के प्रति शिशुओं व बालकों के मन में सहज जिज्ञासा तथा प्रेम होता है उसकी पूर्ति भी होनी आवश्यक है, अत: बाल रचनाएँ विषयसंगत एवं आकर्षक चित्रों से सुसज्जित होनी चाहिए।

किशोरावस्था तक पहुँचकर बालक पशु-पक्षियों के किस्से-कहानियों में उतनी रुचि नहीं ले पाता, जितनी बचपन में लेता है। उसे वास्तव में इनमें मजा नहीं आता क्योंकि तब तक उसकी कल्पना की उड़ान ऊँची हो चुकी होती है, उसका

शब्द-संसार विस्तार पा चुकता है और उसकी मानसिक भूख का स्वरूप भी कुछ और ही हो जाता है। किशोरावस्था में उसे विज्ञान के करिश्मों, साहस के कारनामों, अन्वेषण की प्रवृत्तियों तथा युद्ध आदि की रोमांचकारी गाथाओं में अधिक आनन्द आने लगता है, जबकि लेखक के समक्ष ऐसे साहित्य-सृजन के लिए अभिव्यक्ति की समस्या अपेक्षाकृत कम हो जाती है।

भारतीय साहित्य में प्राय: ऐसी स्थिति देखी गई है कि शिशुओं की रचना किशोरों के दायरे तक पहुँच गई है और किशोरों के लिये लिखी गई रचना का दायरा शिशुओं तक सीमित रह गया है। किशोर-साहित्य-सर्जक की परिधि पर्याप्त विस्तृत होती है इसका उसे सदैव ध्यान रखना चाहिए। दोनों की टकराहट कतई स्वागत योग्य नहीं है। तनिक-सी लेखनीय असावधानी से ऐसा असम्भव है।

चित्रों एवं पाठ्य-सामग्री का सम्पूर्ण बाल-साहित्य में विशेष महत्त्व है। कहना उचित होगा कि इस संदर्भ में ये परस्पर पूरक हैं। खेद का विषय है कि बाल-साहित्य का व्यावसायिक स्तर पर सृजन करने वाले भी इस ओर से काफी उदासीन है।

अच्छे बाल-साहित्य का सृजन और चयन कोई सरल प्रक्रिया नहीं है। इसे हल्का-फुल्का कार्य न समझ कर गम्भीरता पूर्वक किया जाना आज के परिवेश में बहुत जरूरी हो गया है। बच्चों की तरक्की का झूठा नाटक रचाकर अथवा कोई नारा बुलन्द करके हम इस ओर इतना सार्थक कदम नहीं उठा सकते जितना बालकों की बुद्धि परख करके, उनके कोमल मन में व्याप्त करुणा को अनुभव करके तथा उनकी सहज सहानुभूति को प्राप्त करके उठा सकते हैं।

❐

# बाल रंगमंच

बच्चों का मानसिक विकास तथा व्यक्तित्व निर्माण इस बात पर निर्भर करता है कि उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करते हुए स्वयं को अभिव्यक्त करने दिया जाए। उन पर ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं हो जो मन-मस्तिष्क का बोझ बनकर उनके सहज विकास में बाधक बन जाए।

रंगमंच बच्चों को संवेदनशील व संवेगात्मक सम्पूर्णता प्रदान करने वाला अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इसके जरिये वे सामाजिक जीवन के आदर्शों तथा जटिलताओं से अधिक सघनता के साथ साक्षात्कार कर सकते हैं। रंगमंच बच्चों की अवलोकन क्षमता को विकसित करता है तथा उनकी सहज जिज्ञासाओं को शान्त करता है। अभिव्यक्तित्व संवेग से मुक्ति पाने तथा सामाजिक समायोजन की राह में बढ़ने के लिए भी रंगमंच बच्चों को एक विशिष्ट आधार प्रदान करता है। अत: बाल-रंगमंच को सभी क्षेत्रों में एक सृजनात्मक गतिविधि के रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

यह अत्यन्त खेदजनक प्रसंग है कि हमारे देश में बाल-रंगमंच के लिए न तो उपयुक्त वातावरण है और न ही उसे विद्यालयों, अकादमियों एवं सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा सही रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है। कभी-कभार, वर्ष में एक-दो बार कहीं बाल-रंगमंच की चर्चा अथवा गतिविधि हो जाना भारत जैसे भारी जनसंख्या वाले देश के लिए पर्याप्त नहीं है। विद्यालयों में अध्ययन कर रहे विशाल विद्यार्थी-वर्ग की तो यह बड़ी त्रासदी है कि वहाँ उन्हें बाल-रंगमंच का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं कराया जाता, जिससे वे आगे चलकर मंचीय गतिविधियों से जुड़ सकें। विद्यालयों में गतिविधि के नाम पर आयोजित किये जाने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम बाल-रंगमंच को विकास की दिशा देने में कोई योगदान नहीं कर रहे।

इसका कारण यह भी हो सकता है कि देश के समर्थ नाट्य-लेखक तथा रंगकर्मी बाल-रंगमंच में विशेष रुचि नहीं ले रहे हैं। बड़े शहरों की रवीन्द्र रंगशालाओं

और व्यावसायिक रंग केन्द्रों में वयस्कों को आकर्षित करने के लिए तो अनेक गतिविधियाँ की जाती हैं, किन्तु बच्चों के लिए लिखे गए मंचीय नाटकों का प्रदर्शन नहीं के बराबर हैं। पाठशालाओं के मंच की स्थिति तो और भी निराशाजनक है।

वहाँ आने वाले बच्चे टी.वी. पर दिखाए गए 'सीरियल' अथवा अन्य कार्यक्रमों की चर्चा भले ही कर लें बाल-रंगमंच से उनका परिचय वहाँ अनेक वर्षों तक अध्ययन करने के बाद भी नहीं हो पाता है।

## बाल-नाटक कैसे हों?

बाल-रंगमंच को विकसित करने के लिए जरूरी है कि पहले अच्छे बाल-नाटक लिखे जाएँ। मंचीय सीमाओं को ध्यान में रखकर लिखे गए नाटक जिनमें बाल-मनोविज्ञान का ध्यान रखा गया हो तथा जो बच्चों की अभिव्यक्तिगत सामर्थ्य को उजागर कर सकें, बाल-रंगमंच के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। बच्चों की रुचि के कथानक, हास्य-व्यंग्य से भरपूर संवाद तथा उनकी जिज्ञासा को बनाए रखने वाली घटनाएँ बाल-रंगमंच के प्रति बच्चों में आकर्षण पैदा करेंगी।

बाल-रंगमंच के लिए उपयुक्त नाटक कल्पना सम्पन्न लेखकों से लिखवाये जाने चाहिए जो बाल-मानसिकता से परिचित हों। प्राय: देखा गया है कि नामवर लेखक इस काम को पारिश्रमिक प्राप्त करने के लिहाज से बाएँ हाथ का काम समझकर कर देते हैं यह ठीक नहीं है। वस्तुत: अच्छे बाल-नाटक लिखने का कार्य ऐसे सृजनशील लेखकों द्वारा किया जाना चाहिए जिन्हें बच्चों की मंचीय रुचि, अभिव्यक्तिगत सामर्थ्य तथा उनकी ग्राह्यशक्ति का भी पूरा-पूरा ज्ञान हो।

बाल-नाटकों के विषय तथा संवादों की भाषा सरल होनी चाहिए। वे बच्चों की सहज प्रकृति के अनुकूल हों। बाल कथानक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाला अवश्य हो। छोटी पात्र योजना, हँसाने और गुदगुदाने वाले लोक-प्रचलित प्रसंग एवं संवाद, बच्चों की मानसिक भूख बुझाने वाली रोचक घटनाएँ नाटक को सशक्त बनाने में सहयोग करेंगी।

उक्त सभी बातों का ध्यान रखकर लिखे गए बाल-नाटकों की बनावट कुछ इस तरह की होनी चाहिए कि वह बाल-सुलभ जिज्ञासाओं, समस्याओं तथा उत्कण्ठाओं का समाधान करने में समर्थ हो। बाल-रंगमंच के लिए उपयुक्त नाटकों

का विषय सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक अथवा नैतिक कुछ भी हो सकता है किन्तु लेखक का दृष्टिकोण सदा आधुनिक, वैज्ञानिक आधार पर आश्वस्त करने वाला तथा मनोरंजक होना चाहिए।

बाल-रंगमंच के लिए लिखा गया नाटक ऐसा हो जिसमें बाल कलाकारों के भाग लेने की गुँजाइश अधिक हो। उनकी शक्ति पर अधिक व अनुचित जोर न पड़े और वे अपनी भूमिकाएँ आत्मविश्वास के साथ निभा सकें।

बाल-रंगमंच के सम्बन्ध में अब तक अनेक लोगों की धारणा छुट्टी के दिनों में विद्यार्थियों को इकट्ठा करके किसी भी नाटक की तैयारी करके उसका प्रदर्शन करवा देने, सभी पात्रों की भूमिकाएँ बच्चों को सौंप देने और उन्हें नाट्य-प्रस्तुति के तात्पर्य से जोड़े बिना रंगमंच पर प्रवृत्त कर देने की रही है। इस कार्य को सही बाल-रंगमंच की संज्ञा नहीं दी जा सकती। ऐसा करने से इस विशिष्ट नाट्य विधा का विकास नहीं हो पायेगा।

❐

# बाल-फिल्में : जरूरत है बाल-मन को समझने की

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बच्चों को चित्रों के माध्यम से जो जानकारी दी जाती है। उसका प्रभाव उनके मस्तिष्क पर स्थायी होता है। चित्रों के द्वारा कही गई बात को वे सरलता से ग्रहण करते हैं। फिल्मों के बोलते चित्रों का महत्त्व और भी है। अत: कह सकते हैं कि फिल्मों के माध्यम से बच्चों का मनोरंजन भी किया जा सकता है और उन्हें शिक्षित भी किया जा सकता है।

यह अत्यन्त दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे देश में प्रति वर्ष नौ सौ से अधिक फिल्में बनने के बावजूद खासतौर से बच्चों के लिए बनाई जाने वाली फिल्मों का निर्माण नहीं के बराबर है। हमारे देश में बच्चों की संख्या लगभग 30 करोड़ है किन्तु फिल्मों की दृष्टि से वे सर्वथा उपेक्षित हैं। उनके मनोरंजन और भावनात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमारे यहाँ कोई प्रयास नहीं किया जा रहा।

पिछले 40 वर्षों के दौरान हमारे देश के फिल्म जगत ने अद्भुत प्रगति की है किन्तु फिल्म के माध्यम से देश के बच्चों की दक्षता और योग्यता को उजागर करने के प्रयास अभी तक नहीं किये जा सके हैं। बाल-चित्र समिति अथवा निजी फिल्म-निर्माताओं द्वारा अब तक जो छोटे-मोटे प्रयास किये गये हैं वे भी बाल-फिल्म कला की दृष्टि से सार्थक नहीं कहे जा सकते क्योंकि न तो उनमें बच्चों की समस्याओं को ठीक से समझकर उनके हल दिये गये हैं और न ही बाल-मन की भावनात्मक आवश्यकता को ठीक तरह से समझा गया है। आप लोगों की भाँति बाल-फिल्मों के निर्माताओं ने बाल मनोरंजन का सीधा अर्थ काल्पनिक परीकथाओं, देवी-देवताओं, दानवों-राक्षसों, जादू-टोना और छल-कपट की कथाओं को ही परदे पर पेश कर देना समझा है। यथार्थ से जुड़ी हुई कहानियाँ, दैनन्दिन व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयों, विज्ञान तथा आधुनिक जीवन की सुविधाओं के बीच शिक्षा देने की बात तो सोची ही नहीं गयी है। यही कारण है कि हमारे देश में आज बाल-फिल्मों का कोई स्तर नहीं बन पाया है। व्यावसायिक फिल्म-निर्माता की बात छोड़ें और बाल-चित्र समिति की ओर से बनाई गई फिल्मों पर ध्यान केन्द्रित करें तो भी हमें

निराशा होगी। समिति द्वारा निर्मित फिल्में आधुनिक युग के बाल-मनोरंजन से सर्वथा दूर और बाल-मनोविज्ञान से सर्वथा परे हैं। बाल-फिल्मों में मात्र बाल कलाकारों को ले लेना ही पर्याप्त नहीं होता उनमें वयस्क कलाकार भी हो सकते हैं किन्तु मूल बात यह है कि उसमें बच्चों की अपनी समस्याएँ, उनकी अपनी सोच और उनका ही दर्शन होना चाहिए जो उन्हें वर्तमान समय में सुन्दर और आदर्श जीवन की प्रेरणा दे सके।

बाल-चित्र समिति के लिए हमारे देश के अनेक बड़े-बड़े फिल्मकारों ने फिल्में बनाई हैं किन्तु वे सभी बाल-मनोविज्ञान की दृष्टि से बिल्कुल लचर कही जा सकती हैं। इन फिल्मों के कथानक वर्षों पुराने ढर्रे पर तैयार किये गये हैं और जब भी ये फिल्में बनाई गयीं तब बच्चों के सोचने का ढंग, रहन-सहन फिल्मांकन को ग्रहण करने की प्रकृति बिल्कुल बदली हुई थी। आज भी हालत यह है कि बाल-चित्र समिति द्वारा जो भी फिल्में टी.वी. पर दिखाई जाती हैं पुराने ढर्रे की होने के कारण किसी भी उम्र के बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं होतीं। बच्चों के कार्यक्रम का समय पूरा करने हेतु दिखलाई जाने वाली इन फिल्मों को तुरन्त बन्द किया जाना चाहिए।

हमारे देश में बनने वाली बाल-फिल्में सदा बच्चों की दुनिया से दूर रही हैं इसका मुख्य कारण है कि बाल-कथानकों का चुनाव करते समय उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं और मनोरंजन के स्तर का ख्याल बिल्कुल नहीं रखा जाता। घर-परिवार के सदस्यों और वयस्कों के साथ हर रोज वयस्क फिल्म कार्यक्रम देखने वाले बच्चों के लिए फिल्म लिखते समय बाल-फिल्म लेखकों को यह देखना चाहिए कि आधुनिक युग के बच्चों ने कौनसा मानसिक स्तर ग्रहण कर लिया, आज उन्हें मनोरंजन की कौन-सी स्थितियाँ अच्छी लगती हैं? वे कौन-से रोचक प्रसंग हैं जो उनके मन को गुदगुदा सकते हैं, मस्तिष्क को प्रभावित कर सकते हैं और आधुनिक जेट-युग में उनका सच्चा मनोरंजन कर सकते हैं? माध्यम चाहे फिल्म का हो अथवा साहित्य का। बच्चों को सीधे तौर पर शिक्षा देना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कतई उचित नहीं समझा जाता। यह सही है कि बाल फिल्में शिक्षा का बहुत बड़ा साधन बन सकती हैं किन्तु बच्चों को शिक्षा किस रीति से दी जाये, यह देखना बाल-फिल्मकारों का काम है। यदि बाल-फिल्मों को बच्चों की वास्तविक दुनिया के करीब लाना है तो उनके लिए ऐसी पटकथाएँ लिखवानी होंगीं जो उनके वर्तमान स्तर के

अनुकूल शिष्ट मनोरंजन करते हुए उन्हें शिक्षित कर सकें। आज ऐसी फिल्मों की जरूरत है जो बच्चों को देश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक-विरासत और वैज्ञानिक उपलब्धियों से परिचित करा सकें। बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन कर सकने वाली काल्पनिक कथाएँ भी बाल-फिल्मों में ली जा सकती हैं किन्तु उनमें वास्तविकता से दूर ले जाने वाली बातें नहीं होनी चाहिए। बाल-फिल्मों के कथानक ऐसे हों जो परोक्ष रूप से उन्हें जीवन के किसी-न-किसी पहलू से परिचित कराएँ और उन्हें परोक्ष रूप से शिक्षित करें।

बाल-फिल्मों के निर्माण में वृद्धि आज की परिस्थितियों में निन्तात जरूरी है। ये फिल्में चाहें बाल-चित्र समिति द्वारा निर्मित हों, निजी फिल्म-निर्माताओं को प्रोत्साहित करके बनवाई जावें अथवा सरकार स्वयं इनका निर्माण करें। बाल-फिल्मों की संख्या में बढ़ोतरी होनी ही चाहिए ताकि बाल-दर्शक अपनी फिल्मों को टी.वी. पर भी देख सकें और सिनेमा के विशाल पर्दे पर भी। थियेटर अथवा सिनेमा-घर में बाल फिल्में इसलिए नहीं दिखाई जा रही हैं कि उनमें व्यावसायिक मनोरंजन नहीं होता और फिल्मी दुनिया के बड़े सितारे नहीं होते। सिनेमा-घरों में टिकट की बढ़ी हुई दरें भी बच्चे वहन नहीं कर सकते। बच्चों के अपने सिनेमाघर या मिनि-थियेटर हमारे देश में कुछ इने-गिने बड़े शहरों में ही हैं और वहाँ भी सस्ती दरों पर नियमित रूप से बाल-फिल्में प्रदर्शित नहीं की जातीं। अतः सिनेमा-घरों की भी वृद्धि की जानी चाहिए।

हमें यह बात कदापि नहीं भूलनी चाहिए कि आज के बालक का मानसिक स्तर एक बिल्कुल नए ढंग से विकसित हुआ है और वैज्ञानिक उपलब्धियों के नए दौर में रहकर उसके सोचने-समझने तथा अभिव्यक्ति का ढंग भी बदला है। बाल-फिल्मों को हम बच्चों की दुनिया के करीब तभी ला सकते हैं जब हम बाल-मनोविज्ञान और उनकी मानसिकता को ठीक ढंग से समझेंगे, उनकी वर्तमान आवश्यकताओं का अनुसन्धान करके उनके मनोरंजन हेतु स्वस्थ सामग्री जुटाएँगे। बाल-फिल्मों को बच्चों की दुनिया के करीब लाकर ही हम भावी पीढ़ी की उन्नति की बात सोच सकते हैं।

❒

# बाल फिल्में और बाल विकास

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जिस प्रकार भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आदमी के मन-मस्तिष्क को स्वस्थ रखने के लिए अच्छे संस्कारों की जरूरत होती है। मन-मस्तिष्क के अच्छे हालात से आदमी के अन्दर शारीरिक विकार भी प्रवेश नहीं कर पाते। सिनेमाघर, टी.वी. तथा सामूहिक फिल्म प्रदर्शन के माध्यम से विश्व की अधिकांश जनसंख्या अपना मनोरंजन करती है। इस मनोरंजन के जरिये अच्छे संस्कार डाले जा सकते हैं बशर्ते कि मनोरंजन स्वस्थ हो।

फिल्म के माध्यम से सिर्फ बालिग ही नहीं बच्चे भी अपना दैनन्दिन मनोरंजन करते हैं। वर्तमान समय में हमारे देश में कोई सात सौ से अधिक फिल्में प्रति वर्ष बनती हैं। लेकिन अफसोस की बात है कि फिल्मों की इतनी संख्या के बावजूद अच्छी फिल्में, खासतौर से बच्चों के लिए बनाई जाने वाली, अँगुलियों पर गिनने जितनी भी नहीं हैं। बच्चों पर देखी-सुनी बातों का गहरा असर होता है।

हमारे समाज में बच्चों के हाथों जितने अपराध हो रहे हैं, जितनी मानसिक विकृति आ रही है वह आज की व्यावसायिक फिल्मों को देख कर आ रही है। यदि ऐसी अवांछित फिल्मों की तरफ से हम बच्चों का ध्यान नहीं हटा सके तो एक दिन पूरी नई पीढ़ी अँधेरे भविष्य में डूब जाएगी।

ऐसी स्थिति में आज फिल्म निर्माता, सरकार और जनता सभी को सोचना चाहिए। सभी की तरफ से अच्छी बाल-फिल्मों के निर्माण की पहल की जानी चाहिए। जो लोग पहले से फिल्म निर्माण के क्षेत्र में हैं वे व्यावसायिक स्तर पर ही सही, वर्ष में एक दो अच्छी बाल-फिल्में बनाने का प्रयास निरन्तर करें।

यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि अच्छी बाल-फिल्मों से तात्पर्य क्या है? उनका स्वरूप क्या हो? हमारे समक्ष इसकी भी स्पष्ट कल्पना होनी चाहिए।

वस्तुतः जिन फिल्मों के जरिये बच्चों को अपने देश के इतिहास, उसकी समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा और वेद पुराण तथा वैज्ञानिक प्रगति आदि की सही और सच्ची जानकारी मनोरंजक ढंग से दी जा सके, वे ही फिल्में बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी हो सकती हैं।

बच्चे अपनी फिल्मों में साहस और वीरता के कारनामे देखना चाहते हैं। कार्टूनों और अतिमानवों के जरिए विज्ञान और तकनीकी के करिश्मे देखना चाहते हैं। वैज्ञानिक प्रगति के इस युग में उनको यह सब दिखाना पूरी तरह से सम्भव है। संगीत की सुमधुर लहरी, देशभक्ति और भाई-चारे के गीतों के साथ यदि प्रभावशाली कथानक गढ़कर बच्चों को अपनी रुचि की छोटी-छोटी और अच्छी फिल्में दिखाई जाएँ तो उनके मानसिक स्वास्थ्य पर इसका अच्छा असर पड़ेगा।

दैनन्दिन व्यवहार और सामाजिक प्रतिष्ठा की बातें भी बच्चे फिल्मों के जरिये सीख सकते हैं। बच्चों में साम्प्रदायिक सद्भाव, कौमी एकता, देश प्रेम, गलत बातों का विरोध आदि के भाव भी फिल्मों के जरिये भरे जा सकते हैं। सवाल सिर्फ इतना है कि देश के हर जिम्मेदार आदमी द्वारा अच्छी बाल फिल्मों के निर्माण की बात सोची जाए और सम्बद्ध लोगों को इसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए मजबूर किया जाए।

❑

# जीवन में शिक्षा का महत्त्व

बचपन में जब किसी बच्चे में यह जानने और निर्णय लेने की क्षमता नहीं होती कि उसे स्कूल में क्यों भेजा जा रहा है और पढ़ने-लिखने अथवा शिक्षा प्राप्त करने का जीवन में क्या महत्त्व है, शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य क्या है? तब तो निश्चय ही यह प्रश्न माता-पिता अथवा अभिभावकों से पूछा जाना चाहिए। किन्तु जब बालक प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके इस योग्य हो जाए और अपनी रुचि से स्कूल अथवा कॉलेज जाने लगे तो यह प्रश्न बच्चे से ही पूछा जाना चाहिए कि वह शिक्षित क्यों होना चाहता है?

वस्तुत: हमारे वर्तमान समाज की यह एक बड़ी समस्या है कि अभिभावक अपने बच्चों को अँधाधुन्ध तरीके से स्कूल या कॉलेज भेज रहे हैं और बच्चे स्वयं आगे से आगे कक्षा पास करने मात्र की दृष्टि से पढ़े जा रहे हैं। वास्तव में क्या डिग्री प्राप्त करना ही शिक्षा का उद्देश्य है? यदि हाँ, तो क्या डिग्री भर प्राप्त करने से व्यक्ति पूर्णत: शिक्षित हो जाएगा? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका समाधान वर्तमान पीढ़ी को सही रास्ता दिखाने व निश्चित दिशा देने के लिए बहुत जरूरी है।

विचारशील व्यक्ति इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि वर्ष भर तक भारी-भरकम पुस्तकों का बोझ ढोते हुए स्कूल जाते रहना और एक के बाद एक कक्षा पास करते जाना शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य वस्तुत: विद्यार्थी को सामाजिक दृष्टि से संस्कारित करना तथा उसमें विश्लेषण करने एवं निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना है।

जैसे-जैसे समाज का विकास हुआ है, सामाजिक समस्याओं का आकार भी उसी गति से बढ़ा है। प्रत्येक व्यक्ति का परिवार, घर-बाहर, जाति, समाज और राष्ट्र की अनेक समस्याओं से सरोकार बढ़ा है। उसके जीवन में ऐसे कितने ही अवसर आते हैं जब उसे स्वतंत्र रूप से समस्याओं के साथ जूझना पड़ता है और निर्णय लेना पड़ता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति यदि शिक्षित है तो उसका नजरिया दूसरा होगा और

यदि अशिक्षित है तो कोई अन्य। शिक्षित व्यक्ति पहले समस्या पर विचार करेगा, उसके पक्ष-विपक्ष पर दृष्टि डालकर उसका विश्लेषण करेगा, फिर उसके दूरगामी परिणामों को सोचकर उस पर निर्णय लेगा। अशिक्षित व्यक्ति इस प्रक्रिया से गुजरे बिना ही समस्या पर कोई ऐसा निर्णय ले सकता है जिसके परिणाम गम्भीर हो सकते हैं। अत: कहा जा सकता है कि शिक्षित व्यक्ति का कोई भी निर्णय परिष्कृत विश्लेषण से युक्त होता है जिसके परिणामस्वरूप उसे जीवन को निरन्तर बेहतर बनाने के अवसर प्राप्त होते हैं।

जीवन को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने समाज, अपने देश एवं सम्पूर्ण मानव जाति के हित की चिन्ता करता हुआ, अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का पालन करे और यह तभी सम्भव है जब वह शिक्षित होगा। शिक्षा उस दायित्व का बोध कराती है ताकि वह एक अच्छा नागरिक बन सके, अपने हितों की रक्षा भी करे तथा दूसरों के हितों का हनन न करे। साथ ही कमजोर वर्ग को ऊँचा उठाने का प्रयास कर सके।

आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है, यदि हमें अपने स्तर को ऊँचा उठाना है, कोई नौकरी, पद या प्रतिष्ठा प्राप्त करना है तो हमें प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया से गुजरना होगा। क्योंकि आशार्थी अधिक हैं और अवसर कम। ऐसी स्थिति में प्रतिस्पर्धा से जूझने और वांछित अवसर प्राप्त करने के लिए शिक्षा प्राप्त करना जरूरी है। शिक्षित व्यक्ति अपनी आकांक्षा और योग्यता के अनुसार प्रतिस्पर्धा की इस दौड़ में शामिल हो सकता है और उचित समय पर अवसर प्राप्त कर सकता है।

आधुनिक जीवन की विभिन्न चुनौतियों, जैसे—फैशन, भौतिक सुविधाओं की होड़ तथा आय-व्यय में सन्तुलन बनाए रखना भी हमें शिक्षा के जरिये ही आएगा। चुनौतियाँ और भी बहुत हैं, जैसे—साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, भाई-भतीजावाद और जातिवाद आदि। इनसे अशिक्षित रह कर नहीं लड़ा जा सकता क्योंकि अशिक्षितों ने ही ये समस्याएँ उत्पन्न की हैं। साथ ही अच्छी परम्पराओं का पालन तथा गलत परम्पराओं से मुक्ति भी तभी पायी जा सकती है जब व्यक्ति शिक्षित होगा। सामाजिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता भी तभी आ सकती है।

आज का विद्यार्थी, एक सामान्य नागरिक या कल राष्ट्र का नेतृत्व करने वाला कहला सकता है। यह तभी सम्भव होगा जब वह शिक्षित होगा, शिक्षा के महत्त्व

को समझेगा और समझा सकेगा। राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं को समझ कर उनके कारगर एवं व्यावहारिक हल सुझा सकेगा क्योंकि मानव शक्ति को रचनात्मक दिशा देने वाला शिक्षित ही हो सकता है कोई अनपढ़ गँवार नहीं।

शिक्षा मनुष्य का मानव मूल्यों से सही साक्षात्कार कराती है, उसे दिशा देती है और उच्च स्तरीय सामाजिक जीवन जीने को प्रेरित करती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्रियाँ हासिल करना नहीं है, अपितु सुसंस्कृत सामाजिक जीवन के नए सोपान तैयार करना है। यह बात प्रत्येक विद्यार्थी तथा प्रत्येक अविभावक को समझनी चाहिए। शिक्षा प्राप्त करने की दिशा में हम पूरी लगन, पूरे मनोयोग से बढ़ें ताकि समाज के समक्ष आदर्श जीवन के उदाहरण प्रस्तुत कर सकें।

❑

# बच्चों के भविष्य की सुरक्षा

अधिकांश विकासशील देशों में जन्म के बाद चार बच्चों में से केवल तीन ही बचते हैं और जीवित रहते हैं। उनमें से भी एक पाँच वर्ष की आयु होने से पहले ही मौत के मुँह में चला जाता है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार विकसित देशों के 85 प्रतिशत बच्चे जीवित रहते हैं। यह स्थिति भयानक है और बच्चों में मृत्यु दर को कम करने के लिए कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता दर्शाती है।

बच्चों का स्वास्थ्य और सुखी भविष्य इस बात पर निर्भर होगा कि विश्व के सभी माता-पिता 'छोटा-परिवार सुखी-परिवार' की परिभाषा को स्वीकार कर लें। बच्चों का भविष्य तभी सुनिश्चित होगा, तभी उन्हें ऊँची शिक्षा दी जा सकेगी।

आज संसार के समक्ष जन्म लेने वाले बच्चों की परवरिश किए जाने की समस्या अपने उग्ररूप में मौजूद है। हमारे देश के अधिकांश हिस्सों में 35 से लेकर 50 प्रतिशत तक बच्चों का वजन जन्म के समय निर्धारित स्तर 2.5 किलोग्राम से कम होता है। चिकित्सा वैज्ञानिकों के अनुसार इतने दुर्बल बच्चों के जीवित रहने की सम्भावना भी बहुत कम होती है। ऐसे बच्चों में बीमारियों से जूझने की शक्ति नहीं होती। यानि उनकी रोग-प्रतिरोधक-शक्ति बहुत कम होती है। वे मानसिक रूप से भी दुर्बल होते हैं जिसके कारण आगे चलकर उनके तन-मन का विकास पूरी तरह नहीं हो पाता है।

आज हमारे देश में चार वर्ष की आयु से कम 48 प्रतिशत बच्चे निर्धनता के निम्नतरस्तर से भी नीचे का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन बच्चों के स्वास्थ्य के लिए पौष्टिक आहार की निन्तात आवश्यकता है। हमारी माताओं को यह जानना आवश्यक है कि उनके बच्चों के लिए माँ का दूध ही सर्वोत्तम आहार है। बीच के कुछ वर्षों में माताओं द्वारा बच्चों को ज्यादातर बोतल से दूध पिलाया जाता रहा है। यह अभ्यास बच्चों के लिए स्वास्थ्यकर नहीं है।

यद्यपि बच्चों में चेचक की बीमारी अब लगभग समाप्त हो गई है। परन्तु फिर भी यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि उसका निर्मूलन हो चुका है। अतः

5 वर्ष की आयु का होने से पहले ही चेचक आदि भयंकर बीमारियों से बचाव के लिए टीके लगवा लेने चाहिए। अन्य भयानक बीमारियों, जैसे—घटसर, पोलियो, टाइफायड आदि से बचाव के लिए भी बच्चों को टीके लगवा लेने चाहिए। खसरा, गुलसुए, रुबला आदि बाल बीमारियों के टीके भी उपलब्ध कराए जा रहे हैं। उक्त बीमारियों के समान दूसरी भयानक बीमारी 'टिटेनेस' है, जो प्राय: नवजात शिशुओं को दबोच लेती है। इससे बचाव के लिए गर्भवती माता को यथा समय टीका लगवा देना चाहिए।

बच्चों का स्वास्थ्य अच्छा रहे। इस हेतु उनके खान-पान पर विशेष ध्यान देना जरूरी होता है। उनकी खुराक में प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए, जिनसे उनका शरीर तथा मानसिक विकास अच्छे ढंग से हो सके। छोटी उम्र में बच्चों को श्वास सम्बन्धी तथा पाचन सम्बन्धी बीमारियाँ होने की सम्भावना रहती है। कभी-कभी यह प्राणघातक भी सिद्ध हो सकती हैं। परन्तु इनकी रोकथाम आसानी से की जा सकती है। पानी को अच्छी तरह उबाल कर पीने, घर के आस-पास नालियाँ आदि साफ रखने तथा कीटनाशक दवाइयों के इस्तेमाल से पाचन सम्बन्धी रोगों, जैसे—पेचिस, दस्त लगना आदि से बचाव किया जा सकता है।

बच्चों की खुराक में विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा में शामिल करने से उसमें रोग प्रतिकारक शक्ति पैदा होती है। अत: विटामिन 'ए' वाले फल-सब्जियाँ उन्हें नियमित रूप से खिलाएँ। श्वास सम्बन्धी अधिकांश रोग संक्रामक होते हैं, जैसे—निमोनिया, तपेदिक आदि। तपेदिक से बचने के लिए बी.सी.जी. का टीका लगवाना अत्यावश्यक है। अच्छी तरह से देखभाल के साथ बच्चा यदि पाँच वर्ष की उम्र पार कर लेता है तो फिर उसके अधिक उम्र तक जीवित रहने की सम्भावना बढ़ जाती है। बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा केवल परम्परागत उपायों द्वारा नहीं की जा सकती। इसके लिए नवीनतम स्वास्थ्य सुविधाओं का उपलब्ध होना जरूरी है। परम्परागत दवाइयों का प्रयोग करते समय पर्याप्त सावधानी बरतनी होगी। बच्चों के स्वास्थ्य से सम्बन्धित उपर्युक्त सावधानियाँ बरतकर ही हम उनके भविष्य को सुरक्षित रख सकते हैं।

❑

# उन्हें अपराध के मार्ग से निकालें

बच्चों की विविध प्रवृत्तियों का अध्ययन करने वाले संस्थानों द्वारा किए गए सर्वेक्षणों से यह पता चलता है कि हमारे देश में बाल-अपराधियों की संख्या में निरन्तर अभिवृद्धि होती जा रही है। यह हमारे लिए एक बहुत बड़ी चिन्ता का विषय है। समाज में बढ़ रही चोरी, पॉकेटमारी, धोखाधड़ी, शराबखोरी, हत्या एवं डकैती जैसे बड़े अपराधों में जब हम छोटे-छोटे मासूम बच्चों की भूमिका को देखते हैं तो असमंजस में पड़ जाते हैं। आखिर हमारे बच्चे, कल के भारत के निर्माता अपराध की दुनिया में क्योंकर प्रवेश कर रहे हैं? हम सबको इसके कारणों की खोज करके इस समस्या के निवारण हेतु उपाय करने चाहिए।

बाल-मनोविज्ञान के जानकारों का कहना है कि बच्चों को अपराधों की ओर ले जाने में निर्धनता अथवा अभावों की मुख्य भूमिका होती है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसकी इच्छाओं तथा आवश्यकताओं में भी बढ़ोतरी होती है। वह अच्छा खाना, अच्छे कपड़े तथा अच्छे मनोरंजन के साधनों की ओर आकर्षित होता है। वह अन्य सुविधा-प्राप्त बच्चों की तुलना में खुद भी सभी प्रकार की सुविधाओं का उपयोग करना चाहता है। किन्तु जब वह देखता है कि उसे खाने को दो वक्त की सूखी रोटी भी नहीं मिल पा रही, पहनने के लिए फटे-पुराने कपड़े हैं। फटे जूते और फटे-हाल होने के कारण वह न खेलने के लिए 'बैडमिंटन' का बल्ला खरीद सकता है और न अच्छे बिस्तर या सोफे पर बैठकर टी.वी. देख सकता है तो उसके मन में अभावों के प्रति आक्रोश उत्पन्न होता है और वह 'येन केन प्रकारेण' सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अपराध की ओर प्रवृत्त होने लगता है।

अनेक घरों का विपरीत सामाजिक वातावरण तथा अभिभावकों का अनुचित व्यवहार भी अनेक बार बच्चों को अपराध के मार्ग पर डाल देता है। उदाहरण के लिए अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित अभिभावक अनेक बार बच्चों को न तो किसी उचित शिक्षण संस्थान में भिजवा पाते हैं और न ही स्वयं उनकी आवश्यकताओं को समझकर उनकी पूर्ति कर पाते हैं। अतः सही लालन-पालन और शिक्षा के अभाव में बच्चे बिगड़ने लगते हैं। और वे कुसंगति में पड़कर अपराधी बन जाते हैं।

अभिभावकों का पक्षपातपूर्ण व्यवहार भी बच्चों को अपराधी बना देता है। उदाहरण के लिए घर में दो बच्चे हैं। हम एक के प्रति तो विशेष स्नेहिल भावना और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हैं तथा दूसरे के प्रति हमारा रवैया बहुत कठोर तथा उपेक्षापूर्ण होता है। हम अक्सर एक को प्यार और दूसरे को डाँट-फटकार का तोहफा देते रहते हैं। परिणामतः घर का अनुशासन खत्म हो जाता है। हमारा अपना व्यवहार ही हमारा शत्रु बन जाता है जब हम देखते हैं कि हमने जिस बच्चे के साथ कठोर व्यवहार किया तथा जिसकी उपेक्षा की वह अपराधी बन गया है तो हम तिलमिला उठते हैं।

घर में माता-पिता के आपसी झगड़े, कलह, तलाक और असहमति-पूर्ण व्यवहार भी बच्चों के दिलोदिमाग पर विपरीत असर डालते हैं। घर में जब वह अपने अभिभावकों को लड़ते-झगड़ते देखेगा तो वह घर से बाहर रहना चाहेगा और जब घर से बाहर जाएगा तो यह आवश्यक नहीं कि उसे अनुकूल वातावरण ही मिले। वहाँ यदि आपराधिक वातावरण मिल गया तो बच्चा गया गत्ते से।

आस-पड़ोस के वातावरण तथा संगी-साथियों, मित्रों तथा रिश्तेदारों की अनुचित सलाह और ट्रेनिंग भी बच्चों को अपराधी बना देती है। यही कारण है कि लोग अच्छी, साफ-सुथरी तथा भले व्यवहारकुशल लोगों की बस्ती में रहना पसन्द करते हैं। फर्ज कीजिए कि आप शराबी, कबाबी, जुआखोरों तथा उठाईगीरे परिवारों के करीब बस गए तो ऐसे में क्या आपके बच्चे उक्त अपराधी प्रवृत्तियों से बच पाएँगे? शायद नहीं। आस-पड़ोस के कार्य-व्यवहार का असर उन पर अवश्य पड़ेगा।

कुछ बाल-मनोविज्ञान विशेषज्ञों का यह मत है कि बाल-अपराध प्रवृत्ति के पीछे कुछ मानसिक तथा शारीरिक कारण भी होते हैं। उदाहरण के लिए यदि बच्चे के मस्तिष्क का कोई भाग क्षतिग्रस्त हो तो वह आवेगपूर्ण तथा आक्रामक व्यवहार करने लगता है। अपने दिमाग में उठने वाली तीव्र उत्तेजना पर वह नियंत्रण नहीं रख पाता और अपराध कर बैठता है। अनुमान है कि हमारे देश में ऐसे कमजोर बुद्धि स्तर के बच्चों की संख्या कोई 5 प्रतिशत है।

यदि हम बाल-अपराध निवारण की बात करें तो हमें पहले स्वयं में, फिर घर के आस-पास तथा बाद में समाज में इसके छिपे कारणों की खोज करनी चाहिए। वस्तुतः हम बच्चों को शिक्षित होने, बढ़ने और प्रगति करने के लिए जो सुविधाएँ

उपलब्ध करा रहे हैं उन पर अपना ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित करना चाहिए। आप चाहे बच्चों को हर रोज मालपुए न खिलाएँ किन्तु उन्हें जो भोजन दें वह साफ-सुथरा अच्छे बर्तन में दें। उनके स्कूल का टिफिन भी अच्छा हो और उसमें सात्विक नाश्ता हो। बच्चा घर में हो या स्कूल में, वह अच्छे इस्त्री किए हुए साफ कपड़े पहनना पसन्द करता है। आप इस ओर ध्यान दें कि बच्चे के कपड़े धुले हों और प्रेस किए हुए हों।

अपने बच्चों को बहुत खर्चीले, बढ़ी हुई फीसें वसूल करने वाले अंग्रेजी स्कूलों में सभी अभिभावक पढ़ाने में समर्थ नहीं होते क्योंकि वे उनका खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते। अतः चाहे आपका बच्चा साधारण सरकारी स्कूल में ही पढ़े किन्तु स्कूल की निर्धारित 'ड्रेस' जिसमें जूते-मौजे और बस्ता भी शामिल हो, उसे जैसे भी हो खरीदकर दें। इसमें कठिनाई हो सकती है, पर बच्चे की खातिर यह कठिनाई उठाएँ। ऐसा न हो कि उसकी ड्रेस-जूतों, कपड़ों, बस्ते और पुस्तकों के पीछे उसे स्कूल छुड़ाकर घर में बिठा लें। हाँ, स्कूल जाते समय उसे जेब खर्च देना न भूलें।

आजकल छोटे-बड़े रेडियो, टी.वी. सभी शहरों में उपलब्ध हैं। ये किश्तों में भी मिलते हैं। आप उन्हें ऐसी सुविधा अवश्य उपलब्ध कराएँ। साथ में उन्हें एक-दो अच्छी बाल-पत्रिकाएँ भी खरीदकर पढ़ने को दें। बच्चों के पढ़ने और सोने की जगह भी अलग से व्यवस्थित करें।

जहाँ तक हो सके पति-पत्नी के आपसी विभेद के बावजूद घर का वातावरण उचित रखा जाए। बच्चों के सामने आपसी झगड़े करना, विभेद रखना और अनुचित गाली-गलौज भरा व्यवहार करना उचित नहीं है। स्वयं पर नियंत्रण रखें। साथ ही बच्चों से पक्षपातपूर्ण व्यवहार भी कदापि नहीं किया जाना चाहिए। इसका असर उन पर शीघ्र होता है। अतः इससे बचें। अपने सभी बच्चों से समान स्नेह तथा सहानुभूति भरा व्यवहार करें।

जहाँ तक सम्भव हो रहने के लिए अच्छे मौहल्ले और अच्छे पड़ोस को चुनें। पड़ोसियों के यहाँ आना-जाना रखें ताकि उनके तथा उनके बच्चों के जीवन-व्यवहार के बारे में बहुत-सी बातें जान सकें। बच्चों को कुसंगति से बचाएँ। उनके पढ़ने तथा खेलने का समय निश्चित करें।

बच्चा यदि अनुकूल वातावरण में भी असामान्य व्यवहार करे तो बाल-रोग विशेषज्ञ को दिखाकर, उससे सलाह लें।

बाल मनोविज्ञान विशेषज्ञों का कहना है कि बच्चे किसी न किसी कारण से अपराध के मार्ग की ओर प्रवृत्त होते हैं। अतः यदि आप उन्हें इस ओर बढ़ता देखें तो मनोचिकित्सक की सलाह भी ले सकते हैं। वह इस तथ्य की जानकारी कर सकता है कि बच्चे अपराध के मार्ग पर किसी शारीरिक अथवा मानसिक परेशानी की वजह से तो नहीं बढ़ रहा है। बाल मनोविज्ञान की इस दिशा में महती भूमिका है, जिसे नजरअन्दाज नहीं किया जाना चाहिए।

स्मरण रखिए, बच्चे आपके तथा देश के भविष्य को सँवारने वाले नागरिक हैं। उन्हें अपराध के हर मार्ग से बचाना हमारा कर्त्तव्य है। यह सोचकर इस ओर ध्यान देना बन्द न करें कि यह काम सरकार का है। वस्तुतः यह काम हर नागरिक का है क्योंकि इसका सम्बन्ध भी हर नागरिक से है। कोई यह नहीं कह सकता कि अपराध के रास्ते पर बढ़ने वाला कोई नया बालक उसके घर का बच्चा नहीं होगा।

❏

# साम्प्रदायिक सद्भाव और एकता

संसार में हमारा देश भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें अनेक जातियों, अनेक वर्गों, अनेक भाषाओं और अनेक धर्मों के लोग रहते हैं। हमारे देश में खान-पान और रहन-सहन के ढंग में भी बहुत अन्तर पाया जाता है। ऐसी विभिन्नताओं वाले देश में एकता का होना बहुत जरूरी है। हमारा विशाल देश भारत तभी और विशाल और समृद्ध बन सकता है जब विभिन्न धर्मों और जाति के लोगों के बीच साम्प्रदायिक एकता और आपसी सद्भाव बना रहे। अगर हम एक नहीं रह पाएँगे तो हमारा जीना बहुत मुश्किल हो जायेगा। क्योंकि कोई समाज तभी जीवित रह सकता है जब वह एक और मजबूत हो।

हिन्दुस्तान में सदियों से साम्प्रदायिक एकता और सद्भाव रहा है। हमारे ऋषि-मुनियों तथा नेताओं ने सदा से एकता का सन्देश दिया। सारे संसार में हमारी एकता और सद्भाव की भावना सम्राट अकबर के काल में भी बनी रही। अकबर ने भी भारत की एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव की जरूरत को महसूस किया था और उसने भी भारत में 'दीन-ए-इलाही' जैसा आन्दोलन चलाया और उसके माध्यम से सभी धर्मों की अच्छाइयों को लोगों को मानने की प्रेरणा दी।

देश में साम्प्रदायिक एकता और सद्भाव की जरूरत को सभी मानते हैं और सभी धर्म और सम्प्रदाय लोगों को एकता का उपदेश ही देते हैं। फिर भी हमारे देश में बहुत-से ऐसे लोग हैं जो धर्म और जाति के नाम पर सदियों से घृणा और ऊँच-नीच का जहर फैला रहे हैं। हमारे देश में जहाँ कुछ लोगों ने धर्म के नाम पर लोगों में नफरत पैदा की, वहीं बहुत-से सन्त, महात्माओं और अनेक महापुरुषों ने नफरत की आँधी को रोका और लोगों को आपसी प्रेम और भाईचारे का उपदेश दिया।

हिन्दू और मुसलमानों के बीच प्रेम और भाईचारा कायम करने के लिए इन सन्तों ने 'ईश्वर और अल्लाह' के एक होने का उपदेश दिया। भगवान के नाम पर झगड़ने वालों को उपदेश देते हुए सन्त कबीर कहते हैं—

**'हिन्दू, तुरक का साहिब एक, कहा करे मुल्ला, कहा करे शेख।'**

परमात्मा के एक होने का उपदेश देते हुए सन्तों ने कहा कि ईश्वर किसी जाति का, धर्म का नहीं बल्कि सबका है—

**'जात-पाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि-का होई।'**

सन्त कवि रहीम, रैदास, मलूकदास, चैतन्य महाप्रभु, स्वामी रामकृष्ण परमहंस सबने ही एक ईश्वर का उपदेश दिया और कहा—

**'अलख इलाही एक तू, तू ही राम-रहीम'**

महान् सन्त गुरु नानक देव ने भारत में ही नहीं सारे संसार में धर्म और जाति के भेदभाव को मिटाने का उपदेश दिया और जाति-धर्म पर घमण्ड करने वाले को फटकार लगाते हुए उन्होंने कहा कि ये घमण्ड और नफरत की आँधी तुम्हें ही ज्यादा नुकसान करेगी—

**'जाति का गरब न कर मूर्ख गँवारा**
**इस गरब ते चलहि बहुत बिकारा।'**

सन्त नानक देव ने सारे मनुष्यों को एकता और आपसी भाईचारे का उपदेश दिया। वे जाति, धर्म, वर्ण और सम्प्रदाय के भेदभाव के खिलाफ थे तथा सद्भाव के प्रचारक थे।

अनेक मुगल सम्राटों ने धर्म और जाति के आधार पर नफरत फैलायी और हिन्दुओं पर अनेक अत्याचार किये, पर सम्राट अकबर ने घृणा की इस भावना को समाप्त किया और जाति के आधार पर किये जाने वाले सभी अन्यायों और भेदभावों को समाप्त कर दिया। उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक समान इज्जत और दर्जा दिया। अकबर ने सभी धर्मों की अच्छाइयों को अपनाया और लोगों को सभी धर्मों का आदर करने का सन्देश दिया। स्वयं सम्राट भी होली, दीवाली, जन्माष्टमी भी उसी खुशी से मनाता था जितनी खुशी से ईद मनाता था।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी भारत भूमि की एकता और भाईचारे के लिए पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में अपने मठ स्थापित किये और इस तरह उन्होंने भारत के सभी लोगों को एक-दूसरे को जानने पहचानने का मौका दिया। स्वामी

दयानन्द, सन्त नामदेव, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द ने भी धार्मिक भेदभाव को भुलाकर लोगों को प्रेम करने का उपदेश दिया। स्वामी परमहंस कहते थे 'ईश्वर एक है रास्ते अलग-अलग हैं—उस तक पहुँचने के। स्वामी विवेकानन्द कहते थे 'तुम्हारे धार्मिक होने का क्या मतलब है, अगर मानव मात्र के दुःख से तुम दुःखी नहीं होते। मानव सेवा से बढ़कर कोई सेवा नहीं।'

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और ऐसे ही अनेक महापुरुषों ने भी साम्प्रदायिक एकता का उपदेश दिया। गुरुदेव ने अपने राष्ट्रीय गीत 'जन गन मन अधिनायक जय हे' के माध्यम से भी देश की विशालता और एकता की भावना को मजबूती दी है। महान् लेखक बंकिमचन्द्र चटर्जी ने भी 'वन्दे मातरम्' जैसे राष्ट्रीय गीत के माध्यम से सभी धर्मों और जाति के लोगों को भारतमाता की पावनता तथा महानता से परिचित कराया तथा उन्हें देशभक्ति व एकता की प्रेरणा दी।

महात्मा गाँधी जीवन भर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयत्न करते रहे। उनकी नजरों में सभी धर्मों का समान आदर था। उनकी प्रिय प्रार्थना थी—

**'ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सब को सन्मति दे भगवान।'**

उनका एक और प्रिय भजन था—

**'वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर परायी जाणे रे।'**

वे कहते थे—इन्सान वही है जो एक-दूसरे के दुःख-दर्द में काम आये। वे कहते थे—मुझे प्रत्येक धर्म उतना ही प्रिय है जितना कि हिन्दू धर्म। वे मन्दिर-मस्जिद को साम्प्रदायिक एकता में बाधक नहीं मानते थे। उनका कहना था कि लोगों को इनसे प्रेम करने का उपदेश सीखना चाहिए। वे कहते थे—मैं भारत के ही नहीं, सारे संसार के लोगों से प्रेम करता हूँ। उनका कहना था कि हम अपने धर्म को तभी अच्छी तरह समझ सकेंगे जब दूसरों के धर्म का आदर करेंगे।

देश के विकास और प्रगति के लिए हमें सभी धर्मों की अच्छाइयों को अपनाना चाहिए और देश की मजबूती के लिए काम करना चाहिए।

❐

# बच्चों के मोती-से चमकते दाँत

बच्चों के मोतियों जैसे सुन्दर और चमकदार दाँत किसे पसन्द नहीं। सुन्दर दन्त-पंक्ति वाले बच्चों को जब हम हँसता देखते हैं, तो मन खिल उठता है, क्योंकि दाँतों का अपना सौन्दर्य होता है। बीमार दाँत—शारीरिक शक्ति और सौन्दर्य—दोनों को घटाते हैं। बच्चों का सौन्दर्य और स्वास्थ्य लम्बे समय तक बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि शैशवावस्था से ही उनका ध्यान रखा जाए और उनमें स्वास्थ्य रक्षा की अच्छी आदतें डाली जाएँ।

मुख में कई प्रकार के कीटाणु हमेशा रहते हैं, किन्तु बीमार दाँतों में उनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है। ये संक्रामक रूप धारण कर लेते हैं। ये कीटाणु सबसे पहले दाँतों के बाहरी कवच (एनेमल पॉलिश) पर आक्रमण करके उसे ध्वस्त करते हैं, फिर दन्त-रचना में प्रवेश कर जाते हैं। बाहरी कवच की अपेक्षा दाँतों का यह भाग कोमल होता है। इसमें फैली रक्तवाहिनियों, नलियों, नाड़ियों व कोशिकाओं को ये कीटाणु भारी हानि पहुँचाते हैं। इन कीटाणुओं के प्रवेश करने से मुख से भयंकर बदबू और मसूड़ों से पस आना शुरू हो जाता है। कुछ समय बाद मुख पर सूजन और असहनीय पीड़ा के साथ-साथ पायरिया रोग भी आ दबोचता है। दाँतों और मसूड़ों से निकलने वाला यह 'पस' भोजन के साथ गला, फेफड़ा, दिल, गुर्दा व शरीर के जिस स्थान पर भी पहुँचता है, अपना दुष्प्रभाव दिखाता है।

जब बच्चे के पहले (दूध के) दाँत निकलते हैं तो माँ को चाहिए कि हर बार दूध पिलाने के बाद उसके दाँत मुलायम कपड़े से साफ कर दिया करें। सात-आठ माह की आयु होने पर आहार में दूध के साथ रोटी या सेव का टुकड़ा खाने को दें, ताकि उसकी चबाने वाली माँस-पेशियों का विकास हो और बच्चे के जबड़ों को बढ़ने में सहायता मिल सके। चबाने से दाँत मजबूत होते हैं और जीवन में दीर्घकाल तक खराब नहीं होते।

**खान-पान विषयक सावधानी**—शैशव काल में बच्चों को पर्याप्त मात्रा में दूध और कैल्शियम का सेवन कराएँ। इससे चेहरे की हड्डियों, जबड़ों और स्थायी दाँतों का विकास सही ढंग से होता है, जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाए तो फल, हरी तरकारी, सेव, नारंगी और सलाद खाने की आदत डालना आवश्यक है, क्योंकि ये चीजें, पौष्टिक होने के साथ-साथ दाँतों को साफ भी करती हैं।

बच्चों के दाँतडुं में कीड़ा लगने की शिकायत बहुत आम है और इसकी वजह है खान-पान सम्बन्धी लापरवाही, यानी हरदम मीठा खाते-चबाते रहना। प्रायः दूध के दाँत टूटने के बाद भी माताएँ अपने बच्चों को चिकने-मुलायम स्टार्च और चीनी वाले पदार्थ ही देती रहती हैं। ये पदार्थ दाँतों और मसूड़ों में चिपक जाते हैं और बाद में दाँतों की खराबी व दाँत दर्द का कारण बन जाते हैं।

**अन्य गन्दी आदतें**—बच्चे को अँगूठा या अँगुली चूसते देख, पेंसिल-पेन को दाँतों से काटते देख सदा रोकना चाहिए, नहीं तो दाँतों के टेढ़े-मेढ़े और बे-ढंगे होने की पूरी सम्भावना रहती है। उन्हें बहुत अधिक ठंडे या बहुत अधिक गर्म पदार्थ खाने को नहीं देने चाहिएँ। सोते समय बच्चों को चाकलेट, मिठाई, बिस्कुट आदि खाने के लिए कतई नहीं दिए जाएँ। इस बात का भी ध्यान रखें कि बच्चा सोते समय मुँह से साँस न लेकर नाक से ही साँस ले। मुँह से साँस लेने वाले बच्चों की नाक की हड्डियों और जबड़ों का विकास ठीक से नहीं हो पाता।

**सफाई की आदत डालें**—बच्चों को बचपन से ही दाँतों को साफ करने की आदत डालना अभिभावकों का पहला कर्त्तव्य है। अच्छा मंजन व अच्छा ब्रश देकर उन्हें दाँतों की सफाई एवं ब्रश का ठीक प्रयोग समझाना चाहिए। टूथ ब्रश केवल उतना ही सख्त होना चाहिए, मसूड़ों को न छीले, अन्यथा लाभ के बदले हानि जो होने की सम्भावना है। ब्रश को दिगन्तम (हारिजेंटल) अवस्था में रखकर उसे गोल ढंग से घुमाएँ। ऊपर के दाँतों की सफाई करते समय ब्रश ऊपर से नीचे की ओर, और नीचे के दाँतों की सफाई करते समय ब्रश नीचे से ऊपर की ओर ले जाएँ।

दाँतों में दर्द होने, दाँतों के बीच असामान्य दूरी होने या टेढ़े-मेढ़े दाँत होने पर तुरन्त दन्त-चिकित्सक से परामर्श लें। आज के युग में इन सभी का उपचार उपलब्ध है।

वास्तव में प्रारम्भ से ही बच्चों में दाँतों की सफाई की आदत डालनी चाहिए, क्योंकि जो आदत एक बार पड़ जाती है, वह जिन्दगी भर चलती रहती है। दाँतों की सफाई, दिन का पहला और रात का आखिरी काम होना चाहिए। इस सम्बन्ध में आवश्यक सावधानी बरतकर हम बच्चों की सुन्दरता में चार चाँद लगा सकते हैं।

दाँतों की देखभाल जिसमें खान–पान विषयक सावधानी, सफाई, कीटाणुओं से सुरक्षा और बहुत सारी अन्य बातें शामिल हैं बच्चों के साथ ही बड़ों के लिए भी जरूरी हैं। किन्तु यदि बचपन में ही इन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाएगा तो वे आगे चलकर हमें परेशान नहीं करेंगी। समझदार तथा दूरदर्शी अभिभावक इस तथ्य के प्रति सदैव सचेत रहते हैं तथा बच्चों को इस हेतु आगाह करते रहते हैं।

❐

# गुड़ियाओं का अनूठा संग्रहालय

दिल्ली के 'शंकर्स इन्टरनेशनल डॉल्स म्यूजियम' में विश्व के अनेक देशों की विभिन्न दिल लुभावनी गुड़ियों का अनोखा संग्रह है। इस गुड़ियाघर में रखी अनेक रंग-बिरंगी गुड़ियाओं को देखने पर ऐसा लगता है, जैसे ये अभी बोलने लग जाएँगी।

शंकर पिल्लई नामक प्रसिद्ध व्यंग्य-चित्रकार ने इस गुड़ियाघर की स्थापना की थी। उन्होंने गुड़ियाओं का संग्रह सन् 1946 में आरम्भ किया जब उन्हें हंगरी की एक गुड़िया भेंट में मिली। लगभग 1,000 गुड़ियाओं का संग्रह करने के बाद वे देश के विभिन्न शहरों में इनका प्रदर्शन करने लगे। उन्होंने यह सोचा कि अगर बच्चे इतनी सारी, गुड़ियाओं को एक साथ देखेंगे तो उन्हें कितना मजा आएगा। इसलिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय होने वाली क्षति को रोकने और समस्त गुड़ियाओं को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उन्होंने सन् 1965 में नेहरू भवन, दिल्ली में अन्तर्राष्ट्रीय गुड़ियाघर की स्थापना की।

जिस समय इस अनोखे गुड़ियाघर की स्थापना की गयी थी, उस समय इसमें करीब 2,000 गुड़ियाएँ थीं, लेकिन इस गुड़ियाघर में अब 100 से अधिक देशों की करीब 8,000 गुड़ियाएँ संगृहीत हैं।

इस गुड़ियाघर की प्रत्येक गुड़िया का अपना विशेष महत्त्व है। विभिन्न देशों के प्रधानमंत्रियों को उपहार स्वरूप भेंट की गई गुड़ियाओं का भी यहाँ संग्रह किया गया है। उक्त संग्रहालय में संगृहीत सभी गुड़ियाएँ अपने समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों का दर्शन तो कराती ही हैं साथ ही वे अपने देश में वास करने वाले लोगों की वेशभूषा तथा उत्सवों और उनके द्वारा मनाए जाने वाले त्यौहारों का भी प्रतिनिधित्व करती हैं।

इस अनोखे गुड़ियाघर में जहाँ जापानी गुड़ियों का छोटा कद और स्पेनी गुड़ियों की विभिन्न नृत्य मुद्राएँ मन को मोह लेती हैं, वहीं चीन, क्यूबा, हंगरी,

अर्जेन्टीना, थाइलैण्ड, जर्मन जनवादी गणराज्य, अमेरिका, पेरु, मेक्सिको, ग्वाटेमाला, बुल्गारिया, कोलम्बिया, नार्वे, सेमानिया, ब्राजील, युगोस्लाविया एवं स्विट्जरलैण्ड की गुड़ियाएँ भी अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

व्यंग्य-चित्रकार शंकर पिल्लई द्वारा स्थापित किये गये इस अन्तर्राष्ट्रीय गुड़ियाघर को अधिकतर गुड़ियाएँ विभिन्न देशों से उपहार स्वरूप मिली हैं। सन् 1980 में पोलैण्ड में आयोजित गुड़ियाओं की एक प्रतियोगिता में इस गुड़ियाघर की गुड़िया को प्रथम पुरस्कार---'गोल्डन पीकाक फीदर' मिला। यह गुड़िया कथकली नृत्य की मुद्रा में बनाई गई थी।

इस गुड़ियाघर के निकट ही एक वर्क-शाप में भारतीय संस्कृति और यहाँ के जन-जीवन को दर्शाने वाली गुड़ियाओं का निर्माण भी किया जाता है।

इस गुड़ियाघर में भारत के विभिन्न प्रान्तों की दुलहिनों, भारत में प्रचलित नृत्यों एवं यहाँ के आदिवासियों से सम्बन्धित अनेक गुड़ियाएँ हैं। ये गुड़ियाएँ भारत के सभी राज्यों की झलकियाँ भी प्रस्तुत करती हैं। शंकर द्वारा संयोजित एवं स्थापित इस अनोखे गुड़ियाघर की गुड़ियाएँ विश्वभर के बच्चों को आकर्षित करती रही हैं।

❑

# बेटियों की उपेक्षा न करें

भारतीय समाज में ऐसे लोग बहुत कम हैं जो लड़कियों के जन्म पर प्रसन्न होते हैं, भले उनके घर पर पहली बार ही लड़की का जन्म क्यों न हुआ हो। वास्तविक तथ्य यह है कि लड़कियाँ, लड़कों की अपेक्षा पर्याप्त मेहनती और कर्मठ होती हैं। वे लड़कों जैसा आलस्य नहीं करतीं। लड़कियाँ अनेक घरेलू काम तो करती ही हैं, यदि वे कहीं नौकरी भी कर रही होती हैं तो वहाँ अपने दायित्वों का पालन भली-भाँति करती हैं।

हमारे देश में लड़कों के जन्म पर बड़ी धूमधाम की जाती है। खुशियाँ मनाई जाती हैं। यह कितनी विडम्बना है कि अनेक पढ़े-लिखे सभ्य परिवारों में भी बेटी के जन्म पर प्रसन्नता व्यक्त नहीं की जाती। आखिर इसका कारण क्या है? क्या लड़की के पैदा होने को सिर्फ दहेज देने की समस्या से जोड़ जाता है अथवा कुछ और?

लड़की हुई कि लोग सोचने लगते हैं कि अब दहेज देना पड़ेगा। ऐसा प्रयास शुरू से ही क्यों नहीं किया जाता कि हम तो ऐसे घर में ही अपनी लड़की की शादी करेंगे जो दहेज-विरोधी हो, जहाँ किसी प्रकार की ऊट-पटांग माँग नहीं होगी। यदि आज के युग में हमारे द्वारा ऐसे प्रयत्न किए जाते हैं तो निश्चित रूप से हमें सफलता मिलेगी। लड़के वालों में हर परिवार ऐसा नहीं होता जो दहेज की माँग करे ही। अन्तर्जातीय विवाह भी दहेज समस्या के निराकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ऐसे विवाहों को आज समाज और अभिभावकों द्वारा मान्यता मिलनी आरम्भ हो गई है।

## घर-परिवार की शान : बेटियाँ

यह एक विचारणीय बात है कि जितनी सहनशील और धैर्यवान लड़कियाँ होती हैं, उतने शायद लड़के नहीं होते। बेटियाँ घर-परिवार की शान होती हैं। घर की रोजाना देखभाल, साज-सज्जा और घरेलू काम, झाड़ू लगाना, बर्तन माँजना,

खाना पकाना आदि सभी कुछ लड़कियाँ ही करती हैं। लड़के तो अपने दोस्तों के साथ अक्सर मौज–मस्ती में घूमते रहते हैं। बाजार में भी अपने मित्रों के साथ मनचाही चीजें खाते रहते हैं। जबकि लड़कियाँ बाजार जाती भी हैं तो फालतू खर्च से बचती हैं। उनमें जोड़कर रखने की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। इसमें अपवाद हो सकते हैं, लेकिन पूरे परिवार को खिला कर स्वयं भोजन करना, थोड़े में ही सन्तुष्ट रहना, अधिकांश दु:ख–तकलीफों को दूसरों के समक्ष प्रकट न करना, लड़कियों के स्वाभाविक गुण हैं। मातृत्व के रूप में नौ महीने गर्भवती बने रहना और बाद में भी एक लम्बे समय तक बच्चों की देखभाल करना, स्त्री जाति की महानता और त्याग की पहचान है। कितनी तकलीफें और परेशानियाँ झेलती है एक स्त्री, उस बच्चे को जन्म देने के लिए जिसके बारे में यह बिल्कुल निश्चित नहीं होता कि वह माँ का सहारा बनेगा या नहीं।

प्राय: देखा गया है कि लड़कियों की शिक्षा की तरफ परिवार वाले विशेष ध्यान नहीं देते। उन्हें प्रोत्साहन देना तो दूर यदि वे पढ़ना–लिखना चाहती हैं, किसी क्षेत्र में आगे बढ़ना चाहती हैं तो भी उनके रास्ते में तमाम बाधाएँ खड़ी होती हैं। जबकि साहबजादे तीन बार भी किसी कक्षा में असफल रहे हों तो भी उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है। फिर भी प्रत्येक परिवार में ऐसा नहीं होता। कुछ परिवार इसके अपवाद भी हैं। कुछ परिवार आज भी ऐसे हैं जो अपने बच्चों को समान रूप से पालते–पोसते हैं और किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते।

## महिलाओं की सफलताएँ

देखा जाए तो आज महिलाओं ने प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलताएँ हासिल की हैं। महिलाएँ—पुलिस, सेना, पाइलेट सेवाओं तथा कारखानों, बड़े–बड़े अनुसन्धान केन्द्रों में अच्छे–अच्छे पदों पर कार्यरत हैं। उन्होंने स्वयं प्रतिभा के बल पर आगे बढ़ना सीखा है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं बचा जहाँ महिलाओं ने अपने कदम नहीं बढ़ाए हों। महिलाओं की प्रगति और सफलता के लिए आवश्यक है कि उन्हें निरन्तर प्रोत्साहित किया जाए। क्या यह नहीं सोचा जा सकता कि बेटी भी हमारे वंश और परिवार की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगा सकती है; वह भी इन्जीनियर, डॉक्टर, वकील, मजिस्ट्रेट बन कर नाम कमा सकती है। लेकिन कदाचित् हमारे देश में अनेक लोगों द्वारा ऐसा विचार नहीं किया जाता। यदि बेटियों को भी भरपूर प्रोत्साहन दिया जाए तो वे और अधिक प्रगति कर सकती हैं। बेटियों को अभिशाप मानकर उनकी

शिक्षा भी पूरी नहीं कराई जाती जबकि एक बेटी चाहे वह कहीं भी रहे, जीवन भर पूरे परिवार के व्यवस्थित जीवन का आधार बनती है।

हमें चाहिए कि बेटियों को अभिशाप बिल्कुल न समझें। उन्हें सुसंस्कृत बनाने के लिए उनके प्रति सहानुभूति का रवैया अपनाएँ। बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, उन्हें लड़कों से कम समझना जैसी रूढ़िवादी कुरीतियों को समाप्त करें। उन्हें शिक्षित बनाने के लिए उनकी पढ़ाई की तरफ अधिक ध्यान दें।

आज इस बात की बहुत बड़ी जरूरत है कि लड़कों की तरह ही लड़कियों को समझा जाए, उन्हें पूरा सहयोग और संरक्षण दिंया जाए। तभी हमारे देश में महिलाओं की उन्नति सार्थक होगी।

❒

# बेहद जरूरी है बालिका की शिक्षा

प्राय: देखा गया है कि घरों में लोग अपने बालक की शिक्षा की ओर तो पूरा ध्यान देते हैं पर बालिका इस क्षेत्र में सर्वथा उपेक्षित रहती है। अधिकांश अभिभावकों द्वारा उसे केवल घर–गृहस्थी तक केन्द्रित रखने का प्रयास किया जाता है। विद्यालय तो उसे केवल इसलिए भेजा जाता है कि कुछ कक्षाएँ पास कर ले, ताकि वर ढूँढने में सहायता मिल सके। अन्तत: उसे घर ही तो सँभालना है। वह पढ़कर क्या करेगी? यही विचार माता–पिता के दिमाग में रहता है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से हमारे देश की हर क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। हमने अन्तरिक्ष तक के रास्ते तय कर लिए हैं। खाद्यान्न के सन्दर्भ में हम आत्मनिर्भर हुए हैं। हमारी संस्कृति का प्रचार दूर–दूर देशों तक हुआ है। विज्ञान के क्षेत्र में भी हम काफी आगे बढ़े हैं। पर दु:ख की बात है कि नारी–प्रगति के सम्बन्ध में हमारी विचारधारा बहुत धीमी गति से बढ़ी है। हमारी मानसिकता आज भी अनेक संकुचित दायरों को नहीं तोड़ पायी है। जाने कितने लोग आज भी यही मानकर चलते हैं कि बालिकाओं को पढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। उनका कार्य–क्षेत्र तो केवल घर है। उन्हें अच्छी तरह से खाना पकाना, सिलाई–कढ़ाई–बुनाई या अन्य घरेलू काम आ जाएँ, बस काफी है। पढ़ाई के नाम पर अक्षर–ज्ञान हो जाए, ताकि ससुराल पहुँच कर पत्र द्वारा अपना सुख–दु:ख मायके तक पहुँचा सके, बस। किन्तु इतना पर्याप्त नहीं हैं। विश्व की ओर नजर उठा कर देखिए तो आप पाएँगे, कि आज कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ नारी सफलतापूर्वक कार्य न कर सकती हो। वह एक अच्छी डॉक्टर या इन्जीनियर या पायलेट तो बन ही सकती है, साथ ही वह एक कुशल पुलिस अधिकारी या प्रशासनिक अधिकारी भी बन सकती है। यद्यपि भारत में भी महिलाओं की रुचि इन पदों की ओर बढ़ी है, किन्तु उनकी संख्या नाममात्र की है।

हमारे देश की भूतपूर्व प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी ने देश की बागडोर कुशलतापूर्वक सँभाल कर नयी पीढ़ी को राह दिखाई और वे महिलाओं के लिए

प्रेरणा स्रोत बनी। पर गाँवों में या छोटे शहरों में आज भी यही धारणा बनी हुई है कि नारी का कार्य-क्षेत्र घर है। बाहर के काम उसे नहीं करने चाहिए।

## पुरानी मान्यताओं का दोष

बालिकाओं को शिक्षित न करने के लिए हमारी पुरानी मान्यताएँ दोषी हैं। गाँवों में तो अक्सर लोगों के विचार सुनने को मिलते हैं कि हमारे घर की लड़कियाँ कभी स्कूल नहीं गयीं। मैं भी अपनी लड़की को नहीं भेजूँगा।

वस्तुतः लीक तोड़ कर चलना ही प्रगति का सच्चा मार्ग है। हम, हमारा परिवार, हमारा देश प्रगति के मार्ग पर तभी चल सकते हैं, जब हम लीक से हटकर कुछ ऊँची बात सोचें। अपना रास्ता आप बनाएँ। घर-परिवार के सदस्यों को अज्ञानता के अँधकार से तभी बाहर लाया जा सकता है जब घर को सँभालने वाली स्त्री शिक्षित हो, क्योंकि अपने बच्चों को वह अनुशासन का पाठ पढ़ाती है। बच्चों का भावनात्मक विकास माँ के ही हाथों आरम्भ होता है। एक पढ़ी-लिखी माँ यह विकास अच्छी तरह करती है। आपस में मिलजुल कर रहना, समय की पाबन्दी, दूसरों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, बड़ों का आदर आदि बातों को विद्यालय में सीखने का अवसर मिलता है।

## नारी : घर की शोभा

अच्छे संस्कार ग्रहण कर जब बालिका विवाह के बाद अपना घर सँभालती है तो उसका घर सुख का सागर बनता है। वहाँ स्वर्ग का निवास होता है। घर में सुमति का आधार पढ़ी-लिखी समझदार नारी होती है अपने चारों ओर नजर उठा कर देखिए, जिस घर में 'नारी' समझदार है (पत्नी हो या माँ) वहाँ घर स्वर्ग है। पर जहाँ वह 'समझदार' नहीं है, अकेला पुरुष भी वहाँ अधूरा दिखेगा भले ही वह स्वयं कितना ही समझदार क्यों न हो। दूसरे शब्दों में नारी पुरुषों को भी सही दिशा देने वाली होती है। अन्यथा मात्र पुरुष का अंकुशपूर्ण अनुशासन उसके घर को प्रगति की ओर नहीं ले जा सकता।

प्रचीन समय में स्त्रियों को विद्यालय जाने का अवसर भले ही नहीं मिलता रहा हो, किन्तु वही सुगृहिणी सिद्ध होती थी जो अच्छे संस्कारों में पली होती थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह जागरूकता उन्हें संयुक्त परिवार के परिवेश में

मिलती थी। तभी 'खानदान' को लोग विशेष महत्त्व देते थे। आज जब संयुक्त परिवार टूट चुके हैं और परिवारों का आकार छोटा हो गया है तब बालिकाओं को अनुशासन, प्रेमपूर्ण व्यवहार, सहानुभूति, दया आदि के सुसंस्कारों के लिए विद्यालय भेजना आवश्यक हो गया है।

विज्ञान ने जो प्रगति की है और विश्व में जो परिवर्तन शीघ्रता से हो रहे हैं उन्हें एक पढ़ी-लिखी बालिका ही अच्छी तरह से जान सकती है, क्योंकि वह जागरूक होती है। पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर वह निरन्तर अपने ज्ञान को बढ़ाती है। इसके विपरीत अनपढ़ स्त्री छोटी-मोटी बातों पर भी दूसरों पर निर्भर करती है। अज्ञानता के अन्धकार में वह जाने कितने अनर्थ कर सकती है।

बालिका की शिक्षा वस्तुतः दो परिवारों की शिक्षा है। पीहर तथा ससुराल—दोनों स्थानों पर बालिका की शिक्षा उपयोगी तथा कारगर सिद्ध होती है। अतः हमें बालिका की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

# मानसिक विकास की पृष्ठभूमि

सामान्यतः प्रत्येक अभिभावक की यह आकांक्षा होती है कि उनका बच्चा शीघ्र ही बड़ा होकर उनकी आशा-आकांक्षाओं के अनुरूप शिक्षा प्राप्त करे तथा अच्छे-से-अच्छे रोजगार में लगकर उनका सहारा बने। यह आकांक्षा-पूर्ति उसी स्थिति में सम्भव है, जबकि उनका बच्चा शारीरिक व मानसिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ हो। व्यक्ति का मानसिक व शारीरिक विकास एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसका प्रारम्भ बच्चे के जन्म से भी पहले माँ के पेट में ही हो जाता है। आयु के साथ वह बढ़ता जाता है। अतः माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चे के शारीरिक व मानसिक विकास-क्रम पर आरम्भ से ही ध्यान दें।

मानसिक रूप से असामान्य बच्चे की जन्म-दर को कम करने के लिए गर्भवती महिलाओं की समय-समय पर सही तरीके से शारीरिक परीक्षा करवाते रहने की आवश्यकता है। उन्हें अच्छा पौष्टिक भोजन, अच्छी देखभाल तथा स्वस्थ मनोरंजन आवश्यक है। गर्भावस्था की प्रारम्भिक स्थिति से प्रसव तक उसे अप्रत्याशित मानसिक तनाव से बचाना चाहिए। प्रसव सदैव ही कुशल चिकित्सक या नर्स द्वारा करवाया जाए। अनाड़ी व अदक्ष दाइयों द्वारा असावधानी से किए गए ऑपरेशन द्वारा प्रसव कराये जाने पर औजारों का गलत प्रयोग हो जाने का डर रहता है, ऐसे में भूल से बच्चे के सिर पर हुआ आघात उसके मस्तिष्क के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

## शारीरिक व मानसिक विकास

बच्चे के मानसिक व शारीरिक विकास का तमाम गतिविधियों पर जन्म के पश्चात् से ही ध्यान दिया जाना चाहिए। तेज बुखार, सिर की चोट, दौरे, 'मैनिनजाइटिस' तथा इसी प्रकार के अन्य गम्भीर शारीरिक रोगों के आसार दिखलाई देते हैं तो उनकी शीघ्र तथा सही चिकित्सा करानी चाहिए। शारीरिक विकास के साथ ही बच्चे के मानसिक विकास का क्रम प्रारम्भ होता है।

बच्चे का शरीर विकसित हो रहा है, इसका अनुमान हम सरलता से लगा सकते हैं। परन्तु उसका मस्तिष्क विकसित हो रहा है अथवा नहीं, इसका पता लगा पाना अपेक्षाकृत कठिन होता है। फिर भी यह असम्भव नहीं है। आप अपने बच्चे के मानसिक विकास पर निरन्तर गौर करें तथा उसकी, समान आयु के बच्चों से समय-समय पर तुलना करते रहें ताकि आपका बच्चा अन्य बालकों की अपेक्षा सुस्त अथवा पिछड़ा नहीं है, इस बात का पता चल जाय। यदि परिवार या घर के आस-पासउसका समवयस्क बाल नहीं है, तो आप उसकी तुलना अपने ही घर के बड़े बच्चे के मानसिक विकास से कर सकते हैं।

बच्चा सब कुछ बड़ों को देखकर उनकी नकल करता हुआ ही सीखता है। यदि परिवार में पहले से ही दो-चार बच्चे हैं तो बच्चे के विकास में सहायता मिलती है। वहाँ पर बच्चों की नकल करने व सीखने के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। जिन परिवारों में बच्चा अकेला होता है, वहाँ माता-पिता को स्वयं उसे अधिक-से-अधिक समय देना चाहिए।

## विकास की जाँच

बच्चे अपनी कुछ आदतों को अन्य बच्चों की तुलना में देरी तक नहीं भूलते या नहीं छोड़ पाते हैं। सिद्धान्ततः उन्हें ये आदतें दो या तीन वर्ष की आयु तक छोड़ देनी चाहिए। उदाहरण के लिए बिस्तर पर पेशाब करना, अँगूठा चूसना, हकलाना, तुतलाना, सोते समय दाँतों को किटकिटाना, सोते में चौंकना या चलना आदि। यदि बच्चा बड़ा होने पर भी इन्हें नहीं छोड़ पाता है तो समझिये कि वह मानसिक और शारीरिक रूप से विकास की दौड़ में सही नहीं है। उसकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

शहरों में तो बच्चों को तीन या चार साल की उम्र में ही नर्सरी स्कूल में प्रवेश दिला दिया जाता है। परन्तु ग्रामों व कस्बों के बच्चे लगभग 5 या 6 वर्ष की उम्र में स्कूल जाना शुरू करते हैं। आपका बच्चा अपनी कक्षा के अन्य बच्चों की तुलना में ठीक चल रहा है अथवा नहीं, इसके लिए समय-समय पर आपको उसके अध्यापकों से मिलना चाहिए तथा उसकी प्रगति-पत्रिका देखनी चाहिए। यदि बच्चा किसी विषय में कमजोर है तो उसको स्वयं समय देकर पढ़ाना चाहिए या ट्यूशन का प्रबन्ध करना चाहिए।

पढ़ने के साथ-साथ आपका बच्चा खेलकूद तथा अन्य बच्चों से मिलन-जुलने व बातचीत करने में कैसा है, इस पर भी आपको लगातार निगरानी रखने की

आवश्यकता है। अन्य बच्चों से न मिलने-जुलने वाले, अकेलापन पसन्द करने वाले, एकान्त में खेलने वाले, कम बात करने वाले, अधिक झगड़ालू, मारपीट तथा जिद करने वाले बच्चे को भी यथासमय मानसिक उपचार की आवश्यकता होती है।

एक ही कक्षा में कई साल तक फेल होने पर यह लगभग निश्चित हो जाता है कि बच्चे का बौद्धिक स्तर सामान्य स्तर से नीचे है। हाई स्कूल तक पहुँचते-पहुँचते मन्दबुद्धि का निदान लगभग शत-प्रतिशत हो जाता है। ऐसी स्थिति में माता-पिता को बच्चे के भविष्य के लिए कार्यक्रम निश्चित कर लेना चाहिए।

यदि बच्चे का मानसिक विकास इतना कम हुआ है कि उसे जड़-बुद्धि या अल्प-बुद्धि वाला बालक कह दिया गया है, तो उसके माता-पिता को चाहिए कि वे बच्चे के मानसिक स्तर को देखते हुए और अधिक समय तक स्कूल भेज कर अपना व उसका समय नष्ट न करें। यदि उपलब्ध हो और सम्भव हो तो ऐसे बच्चे को मानसिक रूप से अविकसित बच्चों के किसी स्कूल में दाखिल करा देना चाहिए। मन्द-बुद्धि वाले बच्चे प्रायः उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं। उनको कोई कुटीर उद्योग या दस्तकारी का नाम सिखलाना चाहिए।

जो बच्चे मानसिक रूप से अविकसित होने के साथ-साथ शारीरिक रूप से भी अपंग हैं, उनकी समस्या तो और भी जटिल है। शारीरिक रूप से अपंग बालकों की संस्थाएँ भी इन बच्चों को अपने यहाँ रखने में असमर्थता प्रकट कर सकती हैं। हमारे देश में ऐसी संस्थाएँ इनी-गिनी हैं जो मानसिक व शारीरिक दोनों ही प्रकार के बाधित बच्चों के लिए खोली गयी हों। ऐसी स्थिति में इन बच्चों को घर पर रख कर ही उनके प्रशिक्षण व पुनर्वास की कार्यवाही की जानी चाहिए।

बच्चा बड़ा होकर मानसिक व शारीरिक रूप से स्वस्थ नागरिक बने, इसका पूर्ण दायित्व माता-पिता अथवा अभिभावकों पर है। उसके विकास में कोई बाधा न पड़े, उसे योजनानुसार शिक्षा व व्यवसाय प्राप्त हो, यह देखना भी उन्हीं का कर्त्तव्य है।

बच्चों में किसी प्रकार की कमी, रोग अथवा मानसिक समस्या के निराकरण के लिए अपने शहर या पास के शहर में उपलब्ध रोग-विशेषज्ञों, मनोवैज्ञानिकों, मनोरोग चिकित्सकों तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की सलाह भी ली जानी चाहिए। बच्चे मानसिक रूप से स्वस्थ रहें यह परिवार, समाज तथा देश सबके लिए जरूरी है।

# मन्द-बुद्धि बालकों को शिक्षित करना

संसार में बुद्धिमान व्यक्तियों की सदैव प्रशंसा होती आयी है। लेकिन जन-सामान्य का ध्यान समाज के उस वर्ग की ओर बहुत कम जाता है, जो बुद्धि के मामले में भाग्यशाली नहीं होते। उनकी ओर ध्यान जाता भी है तो भी उनमें से अधिकांश उपेक्षा व और उपहास के पात्र बनते हैं। उनकी समस्या को समझने की कोशिश शायद ही कोई करता हो। संसार में मन्द-बुद्धि व्यक्तियों की संख्या समाज के बुद्धिशील व्यक्तियों के लगभग बराबर है।

बुद्धिमान बालक के विकास में घर के, परिवार के और समाज के प्रया: सभी सदस्य पूर्णत: प्रयत्नशील होते हैं, किन्तु मन्द-बुद्धि बालकों के लिए बुद्धि-विकास के अधिक प्रयास क्यों नहीं किए जाते? इस प्रश्न का पूरी तरह से उत्तर देना मुश्किल है, इससे जुड़े हुए कुछ मुद्दों पर प्रकाश डालने की यहाँ कोशिश की जा रही है।

मन्द-बुद्धि बालक-बालिकाएँ सामान्य बालकों की अपेक्षा व्यवहार करने तथा पूर्ण दक्षता के साथ क्रिया-समायोजन करने में प्राय: अक्षम होते हैं। साथ-ही-साथ औपचारिक शिक्षा लेने में भी वे प्राय: असमर्थ होते हैं।

मतिमन्द बालक/व्यक्ति का जीवन उतना मर्यादापूर्ण नहीं होता जितना सामान्य व्यक्तियों का होता है। मन्द-बुद्धि बालक स्वयं का रखरखाव तथा स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करने में प्राय: अक्षम होता है। मतिमन्दता के कारणों का पता हालाँकि अभी तक वैज्ञानिक भी पूरी तरह से नहीं लगा पाए हैं, तथापि इस ओर पूरे प्रयास किए जा रहे हैं।

मन्द-बुद्धिता के प्रमुख लक्षण निम्नांकित हैं—

(अ) **समझने की क्षमता का अभाव**—बालक जो कुछ भी देखता, चखता तथा सूँघता है उसे उसके समझने में कठिनाई होती है। (आ) **धीमी प्रतिक्रिया**—उसकी प्रतिक्रिया कुछ भी पूछने पर धीमी होती है। वह किसी के आदेशों का भी पूरी तरह

से पालन नहीं कर पाता। (इ) **अमूर्त विचार तथा विवेकपूर्ण प्रक्रिया का अभाव**—उसे समय, दिशा, काल, स्थान आदि का ज्ञान सहज ही नहीं होता। (ई) **बौद्धिक विकास की न्यूनता** (लैक ऑफ कोग्नेटिव डवलपमेंट)— उसे इन्द्रिय ज्ञान, स्मृति, परिस्थिति, प्रत्यक्षीकरण, निर्णय आदि प्रक्रियाओं का व्यवहार करके उचित प्रतिक्रिया करने में कठिनाई होती है। (उ) **सही निर्णय लेने की क्षमता का अभाव**—मन्द-बुद्धि बालक साधारण-से-साधारण निर्णय लेने में भी अक्षम होता है। (ऊ) **अपर्याप्त एकाग्रता**—ऐसा बालक एकाग्रता से कोई भी कार्य करने में असमर्थ रहता है, जैसे—एक कार्य को कुछ समय किया फिर वह उसे पूर्ण किए बिना दूसरा कार्य करने लगता है। कार्य में उसका ध्यान अस्थिर होता है। (ए) **स्मरण-शक्ति का अभाव**—अनेक छोटी-छोटी बातें, साथ ही अनेक महत्त्वपूर्ण बातें भी वह भूल जाता है। उन्हें कुछ समय तक ही याद रख पाता है। (ऐ) **अस्पष्टता**—अपने विचार वह आवश्यकता के अनुरूप स्पष्टतया प्रकट नहीं कर पाता है। (ओ) **संवाद-कौशल का अभाव**—कुछ बच्चों में स्पष्ट वाणी का अभाव होता है। वे अपनी बात को बोलकर ठीक ढंग से नहीं रख पाते। उनका भाषा-विकास निम्न श्रेणी का होता है। वे इशारों से भी अपने विचार स्पष्ट नहीं कर पाते। (औ) **सामाजीकरण**—अपरिचित का स्वागत करना, सहपाठियों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करना, नेता को स्वीकारना, खेल अनुसार खेलना जैसी क्रियाओं में मन्द-बुद्धि बालक प्रायः असमर्थ होता है।

मन्द-बुद्धि बालकों के अग्रांकित शीर्षकों से कुछ समूह बनाकर उन्हें प्रशिक्षित तथा शिक्षित बनाने का प्रयास किया जा सकता है—

**पूर्व-प्राथमिक समूह**—पूर्व-प्राथमिक समूह के बच्चों को जिनकी ग्राह्यता अच्छी है तथा जिनकी आँखों तथा हाथों का समन्वय अच्छा है उन्हें व्यक्तिगत कौशल तथा सामान्य ज्ञान के क्षेत्र में प्रशिक्षण दिया जा सकता है। ये मुख्य क्षेत्र इस प्रकार हैं—कक्षा की वस्तुओं का परिचय, उन्हें उठाने की क्षमता बढ़ाना, आँख व हाथ का समन्वय करना। यातायात के साधनों तथा मुख्य सब्जियों व फलों का ज्ञान, शरीर के अंगों का परिचय, प्राथमिक रंगों, कपड़ों तथा भाँति-भाँति की ध्वनियों की पहचान कराना, व्यक्तिगत कौशल तथा संगीत का ज्ञान बढ़ाना आदि।

**प्राथमिक समूह**—प्राथमिक समूह के बच्चों को ग्राह्यता, वस्तुओं को उठाने, रखने की क्षमता तथा सम्बन्धों का ज्ञान होता है। किन्तु जिनकी वाणी क्षमता स्पष्ट नहीं है। उनमें इशारों से समझाने की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

इस समूह के बच्चों को प्रायः निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाता है—कौशल, लिखने की तैयारी, सामान्य ज्ञान, इन्द्रिय ज्ञान, व्यक्तिगत कौशल, कला, संगीत व कविताएँ लिखना आदि। इस कक्षा के बच्चे, जिनकी वाक्–शक्ति कम है, कविता के शब्दों के साथ विभिन्न क्रिया करते हैं। वे ताल से यानि ताली बजाकर भी बहुत कुछ समझा सकते हैं।

**शिक्षण योग्य समूह**—प्राथमिक समूह के स्तर तक के सारे कौशन इन बच्चों में विद्यमान होते हैं। इस समूह के विद्यार्थियों को शैक्षणिक तथा व्यवहारिक ज्ञान देना चाहिए ताकि ये आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हो सकें।

इस समूह को अग्रांकित क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जा सकता है—अक्षर ज्ञान, गणना, सामान्य ज्ञान, समय का ज्ञान, इन्सान, जानवर व पक्षियों आदि की पहचान और अवयवों का ज्ञान आदि।

साथ ही उन्हें कुछ अन्य बातों से भी अवगत किया जा सकता है, जैसे—विभिन्न प्रकार के घरों का ज्ञान, रसोईघर सम्बन्धी क्रियाएँ, विभिन्न घण्टियों की पहचान, इन्द्रिय ज्ञान, प्रत्यक्षीकरण, शैक्षणिक भ्रमण तथा भाषा विकास आदि।

**अभ्यास क्षेत्र**—उक्त बच्चों को अग्रांकित बातों का प्रशिक्षण दिया जा सकता है : आँखों एवं हाथों का समन्वय, एकाग्रता बढ़ाना, योगासन करना आदि। इसके अलावा उन्हें कपड़ों को पहचानने, पहनने व उतारने, बटन खोलने व बन्द करने, ब्रश करने, बाल सँवारने, सही प्रकार से शौच क्रिया सम्पन्न करने व दैनिक जीवन के अन्य कार्य करने का प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है।

**व्यावसायिक शिक्षा**—जिन छात्रों की औपचारिक शिक्षा पूर्ण हो चुकी हो और जो शारीरिक रूप से सक्षम हों, इन्हें पैसों एवं वस्तुओं का लेन–देन सिखा सकते हैं। सामान्य ज्ञान के अन्तर्गत उन्हें डाकघर आदि से परिचित करवाया जा सकता है। इस दिशा में छात्र अधोलिखित व्यावसायिक कार्यों का प्रशिक्षण ले सकते हैं—हाथ-करघा पर कपड़ा बुनाना, आरा मशीन पर लकड़ी काटना, सिलाई करना, चॉक

बनाना, लिफाफे बनाना, लकड़ी काटना, केनिंग करना, मोमबत्ती बनाना, डिब्बे बनाना तथा पैकिंग करना आदि।

इस शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को आत्मनिर्भर बनाना तथा उन्हें समाज में स्वीकृति व आदर दिलाना है।

मन्द-बुद्धि बालक किसी के भी घर में हो सकता है। हमें उसकी उपेक्षा करने की बजाय उसके सामने बुद्धि-विकास के अवसर खोलने चाहिए। प्रकृति ने जिनके साथ न्याय नहीं किया है उनके साथ न्याय करने का हमें संकल्प करना चाहिए।

❐

# संकोच की भावना खत्म करें

बच्चों में शर्मीलापन और संकोच दो कारणों से होता है—एक तो पैतृक कारणों से तथा दूसरा प्राकृतिक रूप से। आपने देखा होगा कि दो भाइयों में एक चंचल होता है तो दूसरा संकोची। शैशवकाल में किए गए व्यवहार का बच्चों के कोरे कोमल मन पर अमिट प्रभाव पड़ता है। घर तथा मौहल्ले के वातावरण का उनके प्रत्येक क्रियाकलाप से सीधा-सम्बन्ध होता है। उसी के अनुरूप वे स्वयं को ढालने का प्रयत्न करते हैं।

बच्चे स्वभाव से ही नकलची होते हैं। बड़ों को जो कार्य करते हुए बच्चे देखते हैं वे भी बिल्कुल वैसे ही कार्य करने की कोशिश करते हैं। बड़ों को बच्चों की जिज्ञासु प्रकृति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए. उनकी जरा-सी भी उपेक्षा से वे कुण्ठाग्रस्त हो सकते हैं। कोई भी हीन-भावना उनमें घर कर सकती है। अधिक डाँट-फटकार और पिटाई से वे प्राय: हठी बन जाते हैं या फिर संकोची। यहीं से बच्चों में संकोचशील स्वभाव का उदय होता है। यही कारण है कि वे भविष्य में भी निर्भय नहीं बन पाते।

## बच्चों की उत्तम शिक्षिका—माँ

माँ बच्चों की सबसे उत्तम शिक्षिका होती है। वह अपने व्यवहार के साथ-साथ अनेकानेक उपदेशों, संदेशों व आदर्शों से बच्चे को बहुत कुछ सिखाती है। इतिहास साक्षी है कि शिवाजी को बचपन में दिए गए माँ जीजाबाई के उपदेशों ने उनके निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उसी से वे सफलता का वरण कर सके।

## आदर्श व्यवहार प्रस्तुत करें

अपने बड़प्पन को बनाए रखने के लिए हर बड़ा यह चाहता है कि मैं छोटे से जो कहूँ वह उसका तुरन्त पालन करे। किसी अपरिचित के आते ही बच्चे से नमस्ते करने के लिए कहना और फिर जिद करना प्राय: बच्चे को उलझन में डाल देता है। उसने आज तक जिसको देखा नहीं, अकस्मात् वह उससे नमस्ते कैसे कर सकता

है? बाल–मस्तिष्क में यह प्रश्न अक्सर चक्कर काटने लगता है और फिर वह किसी के भी आने पर उसके सामने जाने में संकोच प्रदर्शित करने लगता है।

बच्चा सिद्धान्त की अपेक्षा व्यवहार को जल्दी समझता है। कथनी की अपेक्षा करनी का अनुसरण करने की साधारणतया बच्चों की मुख्यवृत्ति होती है। जिसको घर के बड़े यथोचित आदर सत्कार देते हैं, बच्चे स्वत: ही उसको सम्मान देने लगते हैं। बड़ा यदि किसी को नमस्ते करेगा तो बच्चा अपनी नकलची आदत के कारण निश्चय ही करेगा। बाद में चलकर अभिवादन करना उसके व्यवहार का अंग बन जाता है। अत: बच्चों से हमें जिस व्यवहार की अपेक्षा रहती है वह व्यवहार उनके सम्मुख मूर्त्तरूप में करना पड़ता है।

## शिक्षा व संस्कार के अभाव में संकोच

शिक्षा का अभाव भी बच्चों को संकोच की प्रवृत्ति की ओर बढ़ाता है। बच्चों के चारों ओर का वातावरण उनमें आदतों व संस्कारों का निर्माण करता है। यह वातावरण उनको अपने स्वजनों के सान्निध्य से प्राप्त होता है। परिवारों में जहाँ के बड़े लोगों में हीन–भावना होती है, बच्चों में भी हीन–भावना फलने–फूलने लगती है। पिछड़े वर्गों के लोग साधारणतया इस भावना से अधिक प्रभावित दिखाई देते हैं।

बचपन में घर करने वाला संकोची स्वभाव भविष्य के विकास में आड़े आता है। बच्चे किशोरावस्था व तरुणावस्था में भी अपने ही मित्रों और सम्बन्धियों के बीच संकोच प्रदर्शित करके हीन–भावना के शिकार बनते चले जाते हैं। इन बच्चों को एकान्त ज्यादा प्रिय लगने लगता है। किसी के यहाँ जाने में उनको जितनी शर्म आती है, उतनी ही अपने यहाँ किसी मेहमान के आने पर आती है। यहाँ तक कि अपने बराबर के साथियों के साथ भी बात करने, खेलने आदि में उनको संकोच होने लगता है।

जब किसी स्नातक परीक्षा में प्रथम श्रेणी का छात्र संकोच भाव का प्रदर्शन करता है, तब यह प्रश्न अवश्य उठता है कि इसका मात्र प्रथम (फर्स्ट) आना क्या इसके भावी जीवन को सफल बना सकेगा? आखिर वह किसी भी साक्षात्कार–बोर्ड का सामना कैसे करेगा? ऐसे अनेक छात्र तो प्रश्न का उत्तर जानते हुए भी उसको व्यक्त करने में अपने को लाचार महसूस करते हैं। इसके पीछे उनका संकोचशील स्वभाव सक्रिय रहता है। उनमें प्राय: यह भाव जागृत हो जाता है कि मैं जो कह

रहा हूँ वह ठीक है अथवा नहीं। यह प्रश्न उनको अपना मुँह बन्द रखने के लिए विवश कर देता है। इसके पीछे भी बचपन में गलत उत्तर देने के कारण हुई पिटाई या डाँट-फटकार हो सकती है अथवा छोटी-छोटी गलतियों के लिए घर-बाहर उड़ाया गया उनका मजाक भी इसका कारण हो सकता है।

## संकोच दूर करना जरूरी

बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है कि वे संकोच से मुक्त रहें अन्यथा सफलता उनके लिए दूर की चीज बनकर रह जाएगी। अतः बाल्यावस्था से ही कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखकर समस्या के मूल को नष्ट किया जा सकता है।

★ बच्चों को बात-बात पर टोकना नहीं चाहिए। बार-बार टोकने के कारण बाद में बच्चों पर उसका असर नहीं होता या वे कुण्ठाग्रस्त हो जाते हैं।

★ किसी भी प्रकार से डराना या धमकाना बच्चों के विकास के लिए उचित नहीं। भय उसके दब्बूपन का कारण बनता है। चंचलता तो बच्चों का आभूषण है जिससे उनका विकास होता है। उन्हें चंचल होने दीजिए।

★ बच्चों की समस्याओं को समय-समय पर ज्ञात करके उनका समाधान करना चाहिए। अन्यथा वे इनके बोझ से दब कर अपने अन्दर-अन्दर घुटते रहेंगे।

★ छोटी-मोटी गलती के लिए बच्चों की पिटाई नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से बच्चे ढीठ बन जाते हैं। फिर पिटाई को भी वे साधारण-सी बात समझने लगते हैं। धैर्यपूर्वक कोई बात समझाने का बच्चों के मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

★ बुद्धू, नाकारा आदि शब्दों का प्रयोग करके बच्चों को कभी कोसना नहीं चाहिए। 'कैसा बुद्धिहीन बच्चा पल्ले पड़ गया है।' ऐसे वाक्य बच्चों के मन-मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। वे हीन-भावना से ग्रसित हो सकते हैं।

★ सामान्यतया अपने बच्चे की दूसरों के बच्चों से तुलना नहीं करनी चाहिए। 'मोनू तुमसे कितना अच्छा है! तुम तो बिल्कुल मूर्ख हो!' ऐसी तुलना आपके बच्चे के ऊपर गलत असर डाल सकती है। वह दूसरे बच्चों की तुलना में अपने को हीन समझने लगता है।

★ घर के सभी बच्चों को माता-पिता द्वारा समान प्यार मिलना चाहिए। यदि आप अनजाने में एक को अधिक और दूसरे को कम प्यार करेंगे तो निश्चय ही दूसरे के बारे में आपका दृष्टिकोण भेदभावपूर्ण बन जायेगा और उसके मन में स्वयं के प्रति उदासीनता का भाव पनपने लगेगा।

★ बच्चों को माँ-बाप का पूरा प्यार मिलना चाहिए, परन्तु आवश्यकता से अधिक लाड़ नहीं करना चाहिए। जिन परिवारों में—माँ-बाप—दोनों काम पर जाते हैं, बच्चों को अपेक्षित प्यार नहीं मिल पाता। भाग-दौड़ के कारण जहाँ माँ-बाप का स्वभाव चिड़चिड़ा हो ज़ाता है वहाँ बच्चे या तो अत्यधिक संकुचित मनोवृत्ति के हो जाते हैं या स्वतंत्रता का अनुचित लाभ उठाकर उच्छृंखल बन जाते हैं। अतः बच्चों के लिए थोड़ा समय अवश्य निकालना चाहिए।

अभिभावकों को चाहिए कि वे बच्चों की भावनाओं को समझने का प्रयास करें। उनके आत्मविश्वास में वृद्धि करें तथा प्रेरक बाल-साहित्य उपलब्ध कराके उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित करें। उन्हें समय दें और उनके साथ खेलकूद कर उनकी अभिरुचियों का विकास करें, तभी उनका संकोच दूर होगा।

❑

# अच्छी आदतों का विकास

अच्छा हो अथवा बुरा, जब हम किसी एक ही काम को बार-बार करते हैं तो वह हमारी आदत में सुमार हो जाता है। आदत हमारे आचरण से सम्बद्ध क्रिया है। आदत पड़ने में आस-पास के वातावरण की बड़ी भूमिका होती है। कभी-कभी हम मित्रों एवं परिजनों की प्रेरणा से भी आदत डाल लेते हैं। आदत खान-पान, खेलकूद तथा अन्य क्रिया-कलापों से सम्बन्ध रखती है। एक बार किसी बात की आदत पड़ जाने के बाद उसे बदलना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

आदतों को हम निम्नांकित दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(1) अच्छी आदत, (2) बुरी आदत। जो आदत समाज के लिए लाभकारी होती है उसे हम 'अच्छी आदत' कहते हैं और जो समाज को नुकसान पहुँचाने वाली होती है उसे हम 'बुरी आदत' कहते हैं। लेकिन यह विभाजन आदतों के लिए सम्पूर्ण और अन्तिम नहीं है। कुछ आदतें व्यक्तिगत होती हैं, जैसे—समय का पाबन्द होना, जल्दी उठना, सफाई से रहना, प्रसन्न रहना, उदास रहना, देर से उठना व सोना, देर से अध्ययन अथवा काम के स्थल तक पहुँचना, शर्ट के बटन खुले रखना, बालों में तेल न डालना आदि।

कुछ आदतें सामूहिक होती हैं, जैसे—गणवेश में स्कूल जाना (वैसे 'ड्रेस' में तो सभी आते हैं लेकिन 'यूनीफार्म' में आना आदत होती है), कार्य में ध्यान न देना आदि।

हमारी अधिकांश आदतें शारीरिक व मानसिक आचरण से सम्बद्ध होती हैं। विद्यालय में किसी विद्यार्थी की अधिकांश मानसिक आदतें देखने में आती हैं। ये आदतें हैं—सोचकर कार्य करना, प्रसन्न रहना, पुस्तकें पढ़ना, कार्य में व्यस्त रहना आदि।

सहकारिता से कार्य करना, झूठ बोलना, गाली देना, परोपकार करना, देर से आना, नियमित आना, सफाई से रहना, गुरुजनों व स्वजनों के साथ आदर से व्यवहार

करना आदि अन्य आचरणिक आदतें हैं। आचरण पर आधारित होने वाली आदतों में हम शीघ्र ही परिवर्तन कर सकते हैं।

आदत हमेशा धीरे-धीरे ही बनती है। पूर्ण रूप से आदत पड़ने से पहले हम उस आदत के स्थान पर अन्य आदत डाल सकते हैं, जैसे—यदि बालक हमेशा देरी से विद्यालय में आता है तो उसे बार-बार टोक कर नियमित आने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। पुरानी पड़ी हुई आदतें धीरे-धीरे मिट सकती हैं, जैसे—शर्ट के बटन खुले रखना, बालों में तेल न डालना व न ही बालों को सँवरना आदि।

आदतें समय व शक्ति को बचाती हैं तो कभी-कभी हानि भी पहुँचा सकती हैं। इसलिए सही आदत होने से सभी काम सरलता व अच्छे ढंग से पूर्ण किये जा सकते हैं। बुरी आदतें हमेशा कठिनाई उत्पन्न करती हैं। वे अच्छी आदतों के निर्माण में रुकावट डालती हैं। आदत से किये जाने वाले कार्य में अधिकांशतः ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रहती। वे जीवन की जरूरी आवश्यकताएँ नहीं होतीं। वे जीवन की सहज-सरल-सामान्य प्रक्रिया हो जाती हैं। आदतें कार्य करने में रुचि उत्पन्न करती हैं।

## आदतों व चरित्र का सम्बन्ध

बच्चों के चरित्र-निर्माण में आदतों का विशेष हाथ होता है। वे हमारे चरित्र का अभिन्न अंग होती हैं। चरित्र का निर्माण दृढ़ इच्छा-शक्ति व स्थायी भावों से होता है। चरित्र में परिवर्तन लाने हेतु आदत का अच्छा होना आवश्यक है। बालकों में निम्नांकित चार प्रकार के नियमों से आदत डालने के प्रयास किये जा सकते हैं—

★ **निरन्तरता :** आदत डालने के लिए कार्य के प्रारम्भ से अन्त तक लगातार कार्य करते रहना आवश्यक होता है। बीच-बीच में कार्य छोड़ देने से आदत नहीं बनती। यदि हम कार्य में निरन्तरता रखेंगे तो आदत में परिवर्तन ला सकेंगे अन्यथा पुरानी आदतें हम पर हावी रहेंगी।

★ **अभ्यास :** आदत डालने के लिये अभ्यास बहुत आवश्यक है। बिना अभ्यास के सभी प्रकार की आदतें छूटने लगती हैं।

★ **दृढ़ संकल्प :** दृढ़ विचार के बिना कोई काम आसान नहीं हो पाता। कार्य में मन लगाने के लिये दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। उससे कार्य करने पर आदती

पड़ती है। प्रतिदिन अभ्यास करने के लिये भी बालक में दृढ़ संकल्प का होना आवश्यक है।

★ **कार्यशीलता :** हमारी आदतों को सुधारने के लिए दृढ़ संकल्प के साथ कार्य करने की शक्ति संचित करना आवश्यक है। केवल दृढ़ संकल्प करते ही आदत नहीं पड़ सकती। उसमें कार्यशीलता भी जरूरी है।

## शक्ति का प्रयोग न करें

बुरी आदत छुड़ाने के लिये बालक पर शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे बालक की मानसिक ग्रन्थियों पर कुप्रभाव पड़ सकता है। ऐसा करने से बुरी आदत की जड़ें और मजबूत हो जाती हैं। वस्तुतः बुरी आदतें पड़ने के मूल कारणों को दूर करना चाहिए। बालक को यदि भय है तो उसके भय को दूर करके उसमें साहस के साथ सत्य बोलने की आदत डालनी चाहिए। बालक के सामने अच्छी आदतों की प्रशंसा करनी चाहिए ताकि वह अपने आप अच्छी आदतों की ओर प्रेरित हो सके। बालक को बुरे कार्य करते हुए देककर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि इसके कारणों का पता लगाकर अच्छे कार्य की ओर कार्यशील करना चाहिए। बालकों के वातावरण का भी निरन्तर अध्ययन करना चाहिए। बालकों के वातावरण तथा उसकी संगति में भी सुधार लाने की कोशिश करनी चाहिए।

इस दिशा में महापुरुषों की निम्नांकित उक्तियाँ हमारा मार्गदर्शन कर सकती हैं। महात्मा गाँधी ने कहा था—'अध्यापक को बालक के समक्ष सदैव प्रसन्न मुद्रा में उपस्थित होना चाहिए। यदि अध्यापक क्रोध अथवा चिड़चिड़े स्वभाव को लेकर विद्यालय में आता है तो बालकों के प्रति उत्तम व्यवहार नहीं कर सकता है। इससे बच्चों के जन्म-सिद्ध अधिकार— 'प्रसन्नता' को ठेस लगने का डर रहता है।'

डॉक्टर जाकिर हुसैन ने कहा था—''बालक ईश्वर का अंश है। वह हमारी सम्पत्ति नहीं है, वह किसी का खिलौना भी नहीं है। वह तो हमारे पास ईश्वर और मनुष्य की एक धरोहर है। आप उस पर जुल्म नहीं करें। अध्यापक और विद्यार्थी दोनों में एक-दूसरे पर भरोसा और प्रेम हो।'

एक अन्य शिक्षाविद् विद्वान् के अनुसार—'बालक परम्पराओं का दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं। अतः घर और विद्यालय—दोनों में ही उत्तम परम्पराओं को डालने

का प्रयास करना चाहिए। बालकों को उनके अधिकारों व कर्त्तव्यों के बारे में, विशेषतः कर्त्तव्यों के बारे में भली–भाँति तथा व्यवहारिक ढंग से बहुत कुछ बतलाना चाहिए। उनमें सफाई, पढ़ाई, व्यवहार, खान–पान आदि की उपयुक्त आदतें डालने का प्रयास करना चाहिए।'

आदतें बच्चों को जीवन में सही दिशा देती हैं जिनके आधार पर वे देश के अच्छे कर्णधार बनते हैं। अच्छी आदतों का देश और समाज पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। अतः उन्हें अपनाने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

❑

# ज्ञान बढ़ाती हैं पुस्तकें

बड़ों को ही नहीं, बच्चों को भी लम्बे समय तक एक ही काम करते रहने से ऊब होने लगती है। वे भी चाहते हैं कि नए-नए खेल खेलें, नई-नई रंग-बिरंगी पुस्तकें पढ़ें। बच्चे जिनका ज्यादातर समय स्कूल या पढ़ाई में निकलता है, वे भी अक्सर पढ़ाई की एकरसता से उबरना चाहते हैं और खेलकूद कर अथवा अन्य काम करके अपना मन बहलाना चाहते हैं। प्रत्येक बच्चे का मनोरंजन करने का तरीका अलग-अलग होता है। आवश्यकता इस बात की है कि अभिभावक भी बच्चों के जीवन में मनोरंजन के महत्त्व को समझें।

मनोरंजन का होना प्रत्येक के लिए अति आवश्यक है। बच्चों के मनोरंजन के साधन भिन्न होते हैं। कुछ बच्चे खेलते हैं, कुछ बच्चे पुस्तकें पढ़कर भी मनोरंजन करते हैं। पुस्तकें मनोरंजन का श्रेष्ठ माध्यम हैं। निम्नांकित बिन्दुओं पर गौर करने पर हमें पता चलेगा कि पुस्तकें ज्ञान का खजाना तो हैं ही, वे विस्मयकारी ढंग से बच्चों को शिक्षित भी करती हैं।

✯ बहुत-से ऐसे विषय, जिनका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में हम असमर्थ होते हैं, उन्हें हम पुस्तकों के माध्यम से जानते हैं, यथा—अपने विशाल भारत का सम्पूर्ण ज्ञान हम पुस्तकों के माध्यम से सरलता से प्राप्त कर सकते हैं।

✯ ज्ञानवृद्धि के अतिरिक्त पुस्तकें हमारी जिज्ञासा को भी पूर्ण व सन्तुष्ट करने में सहायक होती हैं। यदि किसी विशेष विषय पर हम कुछ जानकारी चाहते हैं तो हमें सम्पूर्ण व विस्तृत जानकारी पुस्तकों के द्वारा प्राप्त हो जाती है।

✯ विभिन्न विषयों की पुस्तकें पढ़ने से बच्चे के सामान्य ज्ञान में वृद्धि होती है, जो कि उसके व्यक्तित्व-निर्माण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

✯ भाषा-ज्ञान या भाषा को समृद्ध करने में पुस्तकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। अधिक-से-अधिक पढ़ने से नये-नये शब्दों की जानकारी प्राप्त होती है, इस प्रकार से बच्चे के शब्द-ज्ञान में वृद्धि होती है।

★ बच्चों के चरित्र-निर्माण में मुख्य भूमिका माता की होती है, किन्तु पुस्तकें भी बच्चों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। हर कहानी, कविता, नाटक में एक संदेश होता है। बच्चे पुस्तकें पढ़ते हैं तथा अप्रत्यक्ष रूप से उस संदेश को ग्रहण करते हैं।

पुस्तकें पढ़ने से बच्चों के ज्ञान में भारी वृद्धि होती है। हमारा देश विभिन्न धर्मों, जातियों का संगम है। विभिन्न राज्यों की भाषा, रीति-रिवाज व रहन-सहन भिन्न-भिन्न है। एक राज्य से दूसरे राज्य का फासला इतना है कि वहाँ जाकर उसके विषय में जानकारी प्राप्त करना सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में किसी भी प्रदेश, धर्म, रीति-रिवाज, भाषा की जानकारी हमें पुस्तकों से सहज ही प्राप्त हो जाती है।

★ बच्चे स्वयं अनुशासित होते हैं। खेल के मैदान में बच्चे शोर मचा सकते हैं, लेकिन वाचनालय में जाते ही वे शान्त हो जाते हैं। यदि आवश्यक बात करनी भी होगी, तो उनका स्वर बहुत ही धीमा होगा। इस प्रकार पुस्तकों के बीच आकर वे स्वयं ही अनुशासित हो जाते हैं, जैसे—किसी वस्तु को उसी स्थान पर रखना चाहिए, जहाँ से वह वस्तु ली गई है। बच्चे स्वयं ही पुस्तकें निकालते हैं तथा पढ़ने के उपरान्त पुनः उसी स्थान पर रख देते हैं।

★ एक अन्य लाभ जो बच्चे को वाचनालय से होता है, वह यह है कि वह अपनी रुचि के अनुसार पुस्तक ले सकता है। जिस विषय के बारे में उसकी कुछ जानने की जिज्ञासा है, उस विषय पर उसे पुस्तकों से सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है। पुस्तकों से उसकी जिज्ञासा शान्त होती है और रुचि को सही दिशा प्राप्त होती है।

★ पुस्तकें हमारी अनेक समस्याओं का समाधान उपस्थित करती हैं।

सामान्यतः एक बच्चे के लिए ढेर सारी पुस्तकें खरीद पाना सम्भव नहीं होता, ऐसी स्थिति में क्या किया जाये? इस समस्या का हल हम बच्चों के द्वारा अपने सहयोग से हर मुहल्ले से एक बाल-पुस्तकालय चला सकते हैं। बच्चे खुद भी एक संगठन बना लें। इससे उनमें किसी भी योजना को स्वयं क्रियान्वित करने की क्षमता का विकास होगा तथा आत्मानुशासन की वृद्धि होगी।

❑

# माँ का दूध और स्तनपान

माँ का दूध बच्चों के लिए सुविधाजनक, आसानी से उपलब्ध होने वाला तथा पौष्टिक पदार्थ तो है ही, यह कीटाणुरहित भी है। यह बच्चों में रोगों से ल ने की ताकत भी उत्पन्न करता है। माँ का दूध एक ऐसा नैसर्गिक आहार है, जो ब च्चे के जीवन और स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। आइए, देखें इसमें और क्या-क्या विश. ताएँ हैं—

★ माँ के दूध से बच्चे को विभिन्न प्रकार की एलर्जी, जैसे—सर्दी, वा -विकार और साँस की शिकायत तथा एग्जिमा इत्यादि का डर नहीं रहता।

★ माँ का दूध पीने से बच्चा कभी भी अत्यधिक मोटा नहीं होता। क्योंकि बच्चा उतना ही दूध पीता है, जितनी उसे जरूरत होती है।

★ माँ के दूध से बच्चे को कब्ज नहीं होता और न ही उसके दाँत खराब होते हैं। इससे बच्चे के रक्त में लवण का स्तर बढ़ता है तथा बच्चा निर्जलन का शिकार नहीं होता।

★ माँ का दूध गाय के दूध से भी उत्तम है। गाय में 80 प्रतिशत 'केमिन' होता है, जिसे बच्चे आसानी से पचा नहीं पाते। हालाँकि गाय के दूध में माँ के दूध से ज्यादा कैल्शियम रहता है। माँ के दूध में बच्चे के मस्तिष्क के विकास के लिए जरूरी 'अमीनो एसिड', 'टारीन' भी उपस्थित होता है।

★ माँ का दूध पीने से माँ व बच्चे का गहरा शारीरिक भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित होता है। इसे 'काडिंग' कहा जाता है। यह बच्चे के विकास में बहुत सहायक होता है।

★ स्तनपान से माँ का शरीर जल्दी 'शेप' में आता है। गर्भावस्था में माँ का वजन लगभग 10 कि.ग्रा. बढ़ जाता है। यह चर्बी का ऐसा सुरक्षित भण्डार होता है, जो बच्चे को दूध पिलाते समय काम आता है। गर्भाशय के कारण जो पेट निकल

आता है वह भी स्तनपान से सिकुड़कर सुडौल हो जाता है। इससे गर्भाशय भी जल्दी ही पूर्ववत् हो जाता है।

## स्तनपान कब तक?

छः माह की आयु तक माँ का दूध बच्चे के लिए सर्वोत्तम होता है। इसके बाद भी यदि पौष्टिक भोजन के कारण माँ के वक्ष से दूध उतरता है तो पिलाने में कोई हानि नहीं है। ठोस आहार के साथ-साथ माँ का दूध भी मिलता रहे, तो अति-उत्तम बात है। हाँ, दो वर्ष के बाद सामान्यतः दूध छुड़ा देना चाहिए।

स्तनपान कराने वाली माँ के लिए पौष्टिक भोजन जरूरी है। सही आहार के अभाव में माँ का स्वास्थ्य तो चौपाट होगा ही, बच्चे के लिए पर्याप्त दूध भी नहीं बनेगा। इसलिए नीचे दिया गया आहार अवश्य लें--

लगभग 600 मि.ग्रा. दूध या इतनी ही पौष्टिकता रखने वाला पनीर अथवा दही लें। एक कप दही या 30 ग्राम पनीर में 250 ग्राम दूध जितनी पौष्टिकता होती है।

एक बड़ा चम्मच मक्खन या घी लें। दिन में चार बार फल या सब्जियाँ लें। मेवे तथा दालें भी लें।

प्रतिदिन 4 कप जूस, सूप या तरल पदार्थ अवश्य लें। यदि आप शाकाहारी हैं, तो विटामिन बी-12 अवश्य लें। अण्डे तथा दूध के साथ भी इसे लें।

## स्तनपान का सही ढंग

माता आराम से बैठकर दूध पिलाए तो बेहतर होगा। बच्चे को गोद में लें, उसका सिर माता की बाँह पर टिका रहे, ऐसा करने से बच्चे का सिर उसके शरीर से ऊँचा रहेगा और इससे न तो बच्चे की साँस रुकेगी, न ही अतिरिक्त दूध के कारण उसका गला रुकेगा।

बच्चे का मुख जैसे ही 'निपल' को स्पर्श करेगा वैसे ही वह उसे ढूँढेगा और उसे मुँह में लेकर स्तनपान करने लगेगा। दूध पिलाते समय बच्चे की ठोड़ी सहजता से स्तन पर टिकी रहनी चाहिए और माता को चाहिए कि अपने सीधे हाथ की पहली दूसरी अँगुली से स्तन को तनिक पीछे की ओर दबाएँ जिसके कि दूध पीते समय बच्चे को साँस लेने में दिक्कत न हो। बच्चे को अपने से इनती दूर न रखिये कि वह

आसानी से निपल को मुँह में न ले सके और उसे अनावश्यक रूप से आगे गर्दन खींचनी पड़े। यह भी देख लीजिए कि स्तन और उसके मुँह के बीच में पहने और ओढ़े हुए कपड़े रुकावट न डालें। बच्चा गोद में ऐसी स्थिति में होना चाहिए कि दूध पीते समय उसके कान के ऊपर की मोटी माँसपेशियों को चलते हुए आप आसानी से देख सकें।

एक स्तन से दस मिनट दूध पिलाने के बाद छुड़ाने के लिए उसके मुँह या सिर को जोर से खींचकर अलग न करें, बल्कि अपनी सबसे छोटी अँगुली को उसके मुँह के कोने पर टिकाकर धीरे से निपल छुड़ा लें या फिर ठोड़ी पर हल्का दबाव डालकर चूसना छुड़ा दें। एक स्तन से दूध पिलाने के बाद बच्चे को डकार दिलवाना जरूरी है। इसके बाद ही उसे दूसरे स्तन पर लगाएँ।

## देखभाल और सावधानी

स्तनपान के दौरान कुछ महिलाओं में स्तनों एवं निपलों में तकलीफ की शिकायत हो जाती है। लेकिन यदि निम्नलिखित सावधानियाँ बरती जाएँ तो तकलीफ की सम्भावना कम ही रहेगी—

सबसे बड़ी सावधानी यही है कि निपल्स को गीला न रहने दें और उन्हें हवा का स्पर्श भी लगने दें। दूध पिलाने के बाद सुखाकर उन पर कोई अच्छी क्रीम लगाएँ। यदि निपल में से कुछ स्राव होता हो तो 'ब्रा' के अन्दर मुलायम कपड़े के पैड रखें और उन्हें बदलती रहें तथा डॉक्टर को भी दिखाएँ। यदि निपलों में घाव हो गया हो और बच्चे के चूसने पर तकलीफ हो तो डॉक्टर को बताएँ। घाव वाले निपल में रोगाणु पनप सकते हैं। इसके अलावा कभी-कभी दूध की नलिका में अवरोध हो सकता है या स्तन में दूध बहुत अधिक इकट्ठा हो जाता है—ये दोनों बातें भी तकलीफ देती हैं, इनसे बचने के लिए बहुत कसी हुई 'ब्रा' न पहनें।

निपल के नीचे या बगल में गाँठें हों, तो लापरवाही न बरतें। डॉक्टर को दिखाएँ। यदि लापरवाही करेंगीं तो स्तन में फोड़ा हो सकता है, जो घातक भी सिद्ध हो सकता है।

जन्म के लगभग 30 मिनट के बाद बच्चे को बड़ी भूख लगती है और इस समय उसे स्तनपान कराने पर दूध खूब निकलता है। यदि बच्चा समय से पहले हुआ

है या बीमार है तो वह थोड़े समय के बाद दूध पिएगा, लेकिन पिएगा अवश्य। इस समय बच्चा पूरी शक्ति से दूध खींचता है।

नई खोजों के अनुसार बच्चा जब माँगे तभी दूध दें और जितना पिये, पीने दें। शुरू में हर दो-तीन घण्टे पर दूध दें। बच्चा जैसे-जैसे बड़ा हो स्तनपान की मात्रा छः और सात तक बढ़ा दें।

एक स्तनपान के समय बारी-बारी से दोनों स्तनों से दूध पिलाएँ। एक से पी ले, तो डकार दिलाने के बाद दूसरे पर लगाएँ। यदि वह पीते-पीते सो जाए, तो अगली बार उसी स्तन से पहले दूध पिलाएँ। याद के लिए उस ओर के ब्रा-कप पर एक सैफ्टीपिन लगा लें।

स्तनपान कराते समय भरसक शान्त रहें और शोरगुल से दूर रहें। तनाव, थकान या चिन्ता होने से दूध का बहाव सन्तोषजनक न होगा। शान्त वातावरण में बच्चा अधिक सन्तुष्ट होकर स्तनपान करता है।

स्तनपान के साथ-साथ बोतल से ऊपर का दूध न दें। क्योंकि ऐसा करने से बच्चा स्तनपान कम करेगा और स्तनों में दूध कम बनेगा। बच्चा बोतल से दूध पियेगा, तो उसे चूसने में कम मेहनत लगेगी और वह धीरे-धीरे स्तन की जगह बोतल की ही माँग करेगा।

याद रखिए, स्तनपान कराने से स्तनों में दूध अधिक उतरता है जो बच्चे के लिए भी अच्छा है और माँ के लिए भी।

❐

# बच्चों की सार-सम्भाल का मौसम

बच्चों की बीमारियाँ सर्दी के मौसम में अन्य ऋतुओं से ज्यादा होती हैं और यदि उनका उचित उपचार न हो तो ये जानलेवा भी हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, श्वास सम्बन्धी संक्रामक बीमारियाँ जो बहुत ही आम हैं, ये सर्दी के मौसम में सबसे ज्यादा होती हैं। इनमें सबसे मामूली किस्म का संक्रामक रोग आम भाषा में सर्दी-जुकाम कहलाता है। जुकाम की अगर ठीक से देखभाल न की जाय, तो बच्चों को ब्रोंकाइटिस, निमोनिया आदि अन्य रोग हो सकते हैं। निमोनिया आदि का सुचारु इलाज न करवाया जाय तो उसकी जिन्दगी को भी खतरा पैदा हो सकता है। कमजोर बच्चों में बीमारियों की जटिलताएँ और भी ज्यादा होती हैं। वे और भी कई बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। इसीलिए सर्दी के मौसम में बच्चों की देखभाल करना अति आवश्यक है।

## उन्हें ठण्ड से बचाएँ

सर्वप्रथम बच्चों को ठण्ड से बचाना चाहिए। ठण्ड से बचाव के लिए उन्हें ऊनी कपड़े पहनाने चाहिए जो न ज्यादा ढीले हों और न ही ज्यादा तंग। कपड़े पहनकर बच्चे आसानी से खेल सकें और हाथ-पाँव चला सकें। अगर बच्चों को कहीं बाहर ले जाना हो तो उन्हें अच्छी तरह से औढ़ाकर ही ले जाएँ। उन्हें ठण्ड में एकदम गर्म कमरे से बाहर न लाएँ। इससे सर्दी लगने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। बच्चे को गीले में नंगे पाँव न घुमाएँ। अगर पैर फट जाएँ तो सोते समय वैसलीन लगाकर सुबह गर्म पानी व साबुन से धोएँ।

बच्चों को साफ-सुथरा रखने तथा नहलाने के लिए गर्म पानी ही काम में लेना चाहिए। साफ-सुथरा न रखने से बच्चों को खुजली की बीमारी हो सकती है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए बच्चे की खुराक का ध्यान रखना भी बहुत जरूरी है। उम्र के अनुसार उन्हें सन्तुलित भोजन देना चाहिए। हमारे यहाँ पर आम धारणा है कि जो माँ बच्चे को अपना दूध पिलाती है उसे ठण्डी चीजें नहीं खानी चाहिए। इससे उसके बच्चे को सर्दी, जुकाम, निमोनिया आदि हो सकता है। यह बात निराधार है।

स्तनपान कराने वाली माँ की खुराक का बच्चे को लगने वाली सर्दी, जुकाम आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अत: माताएँ बेधड़क मनचाहा भोजन कर सकती हैं।

सर्दी के मौसम में चूँकि ऐसी बीमारियाँ होती हैं जिनमें बचाव के टीके लगवा कर आसानी से बचा जा सकता है। इसीलिए हर एक बालक को टीके लगवाना अत्यन्त आवश्यक है। टीके हर साल लगवाने की आवश्यकता नहीं होती। निश्चित समय पर ये टीके लगवाकर बच्चों को कुक्कर खाँसी, चेचक, तपेदिक, टिटनेस, डिफ्थीरिया, बाल-पक्षाघात और खसरा आदि से बचा सकते हैं। ये टीके हर बड़े अस्पताल में मुफ्त लगाए जाते हैं।

छोटे बच्चों का इस मौसम में खास तौर से ध्यान रखना जरूरी है क्योंकि सर्दी से बच्चों का शरीर ठण्डा पड़ जाता है। इससे शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए इनको अच्छी तरह ओढ़ाकर रखना चाहिए। कमरा ठण्डा हो तो अँगीठी वगैरह से गर्म किया जा सकता है। इस हालत में यह ध्यान रखना जरूरी है कि कमरे में हवा का आदान-प्रदान होता रहे। नहीं तो वहाँ 'कार्बन मोनोऑक्साइड' का विषैला प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।

अगर घर में किसी को भी सर्दी-जुकाम हो रहा हो तो यथासम्भव बच्चे को उस मरीज से दूर ही रखना चहिए क्योंकि सर्दी, जुकाम भी एक छूत की बीमारी है।

सर्दी के कारण बच्चे की नाक से पानी आये तो उसे इधर-उधर न डालें बल्कि उसकी नाक मुलायम रूमाल से साफ कर दें। कई बार बच्चे की नाक में पानी आ जाने की वजह से उसे स्तनपान करने या शीशी से दूध पीने में कठिनाई हो सकती है।

सर्दी, जुकाम होने पर बच्चे की भूख बन्द हो जाती है। इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जब सर्दी ठीक हो जाएगी तो भूख भी लगनी शुरू हो जाएगी। सर्दी, जुकाम में उसे कब्ज भी हो सकती है और दस्त भी लग सकते हैं।

सर्दी के मौसम में यह भी ध्यान रखें कि बच्चे को चोट आदि न लगे क्योंकि इस मौसम में चोट लगने पर पीप पड़ने की सम्भावना अधिक रहती है। अगर फिर भी बच्चे के चोट लग जाये तो घाव पर कोई कीटाणुनाशक (एन्टीबाइटिक) मलहम जरूर लगाएँ।

सर्दी का मौसम बच्चों की सार-सम्भाल का खास मौसम है। इस पर ध्यान देना बहुत जरूरी है।

❐

# अच्छा स्वास्थ्य : विटामिनों की आपूर्ति से

बच्चों के अच्छे स्वास्थ्य और शरीर–वृद्धि के लिए विटामिनों की नियमित आपूर्ति आवश्यक है। वस्तुत: प्रत्येक विटामिन का एक विशिष्ट कार्य होता है। लेकिन बहुत–से विटामिन एक–दूसरे के संयोजन तथा भोजन के अन्य तत्त्वों के साथ लिए जाने पर उपयोगी सिद्ध होते हैं।

**विटामिन ए :** यह शरीर के सूक्ष्म एपीथीलियम (त्वचा की ऊपरी सतह) तन्तुओं को स्वस्थ रखने के लिए जरूरी है। इस विटामिन की कमी से नेत्र गोलक (आई बाल) की बाहरी झिल्ली अपनी श्वेत तरलता खो देती हैं और शुष्क तथा झुर्रीदार हो जाती है। ऐसी हालत में हल्की रोशनी में दिखलायी नहीं देता, जिसे रतौंधी कहते हैं। धीरे–धीरे आँखों की रोशनी कम होती चली जाती है। आँख का केन्द्रीय भाग 'कानिया' अपनी पारदर्शिता खोकर धुँधला भी हो सकता है। विटामिन ए के सेवन से त्वचा भी स्वस्थ रहती है। विटामिन ए दूध से बने पदार्थ, मछली, हरी साग–सब्जियों तथा पीले फलों में अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है।

**विटामिन डी :** दूध से बने पदार्थों व मछली के 'लिवर आइल' से प्राप्त होता है। वर्तमान शोध से पता चला है कि मछली के तेल में विटामिन ए और डी की प्रचुर मात्रा पायी जाती है तथा इससे नेत्र रोग की सुरक्षा के साथ–साथ हृदय रोग की भी रोकथाम होती है। सूर्य की किरणों द्वारा भी विटामिन डी मिलता है। विटामिन डी की कमी से कुछ खनिज, जैसे— कैल्शियम आदि शरीर में भली–भाँति अवशोषित नहीं हो पाता। फलस्वरूप कई हड्डी के विकार हो जाते हैं।

**विटामिन बी कॉम्पलेक्स :** इसे 'एन्टीस्ट्रेस' यानि थकान मिटाने वाला विटामिन भी कहते हैं। यह त्वचा की रक्षा के लिए भी बहुत बढ़िया विटामिन है। यह 'नर्वस' सिस्टम को फायदा पहुँचाता है। साथ ही रक्त बनाने में सहायक होता है। विटामिन बी–6 मासिक–धर्म पूर्व की तकलीफ में भी राहत पहुँचाता है। इसकी कमी का सबसे अधिक प्रभाव यह होता है कि साँस दुर्गन्धमय बन जाती है। साबुत

अंकुरित अनाज फलियों, अण्डे, मेवे मिलीजुली दालों आदि में विटामिन बी-6 अधिक पाया जाता है।

**विटामिन सी :** यह शरीर के स्वस्थ तन्तुओं, खासतौर से त्वचा एवं मसूड़ों और रक्त नलिकाओं को मजबूत बनाता है। अधिकांश ताजे फलों, हरी साग-सब्जियों और खट्टी चीजों से यह विटामिन प्राप्त होता है।

**विटामिन ई :** यह मिली-जुली दालों, अण्डे और हरी सब्जियों द्वारा प्राप्त होता है। इससे त्वचा की सुरक्षा होती है और प्रजनन रक्तचाप और रक्त जमने की प्रक्रिया (क्लोटिंग) को भी नियंत्रित करता है।

**विटामिन और भोजन पकाना :** अत्यधिक पकाने और दुबारा गर्म करने के साथ ही प्रिजर्विंग (डिब्बा बन्द) या रिफाइनिंग (सफाई) करने से विटामिन नष्ट हो जाते हैं। खासतौर से विटामिन सी तो इन क्रियाओं द्वारा जल्दी ही नष्ट हो जाता है। अत: उसे तो भाप द्वारा ही पकाइये या फिर बहुत कम देर तक पकाइये और वह भी बहुत कम पानी में।

विटामिन की कमी के सामान्य लक्षण हैं—थकान और चिड़चिड़ाहट। आयु की विभिन्न अवस्थाओं में हमको विभिन्न विटामिनों की आवश्यकता होती है। अधेड़ों और बूढ़ों के लिए मल्टी-विटामिन लेना उपयोगी रहता है। गर्भवती माताओं, शिशुओं और बढ़ते बच्चों को अधिक विटामिन की आवश्यकता होती है। बीमारी या ऑपरेशन के बाद भी अतिरिक्त विटामिन लेने की सलाह दी जाती है। विटामिन लेने के पहले डॉक्टर से सलाह अवश्य ले लेनी चाहिए। खुद डॉक्टर बनकर विटामिनों का प्रयोग करना उचित महीं होता है।

❑

# उनका मोटापा न बढ़ने पाए

बच्चों के स्वास्थ्य के विषय में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार मोटे माता-पिता के बच्चे दुबले माता-पिता के बच्चों की तुलना में अधिक मोटे होते हैं। परन्तु फिर भी इसे पूर्ण रूप से वंशानुगत नहीं माना जा सकता। वंशानुगत क्रम के अलावा परिवार के वातावरण और खान-पान की आदतों का भी बच्चे के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रायः ऐसा होता है कि अधिक खाने वाले माता-पिता की आदतें बच्चा अनजाने ही सीख लेता है और आगे चलकर मोटापे का शिकार हो जाता है। अलावा इसके कोई बच्चा यदि जरूरत से ज्यादा बार-बार, दिन भर कुछ-न-कुछ खाता रहे तो भी वह मोटा हो सकता है।

अधिक मोटा होने से बच्चा भावनात्मक स्तर पर हीन-भावना या कुण्ठाओं से ग्रस्त हो सकता है। मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह होता है कि अधिक खाना उसका स्वभाव बन जाता है और वह मोटापे से कभी छुटकारा नहीं पा सकता।

## मोटापे से छुटकारा कैसे पाएँ

अगर आपके बच्चे जरूरत से ज्यादा मोटे हैं तो कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं। इन पर अमल करके आप उनका मोटापा दूर कर सकते हैं—

✯ घर से मोटापा बढ़ाने वाले गरिष्ठ पदार्थों को हटाकर कम कैलोरीज वाले खाद्य पदार्थों को प्रयोग में लाएँ।

✯ मोटे बच्चों के सामने केवल स्वाद के लिहाज से कुछ-न-कुछ खाते न रहें। बच्चों को कभी खाने की चीजें रिश्वत के रूप में न दें। बच्चे द्वारा किये गये अच्छे काम की सराहना को खाने की वस्तुओं के साथ नहीं जोड़ें।

✯ बच्चों पर इस बात के लिए बिल्कुल जोर न दें कि प्लेट में परोसा हुआ सब खाना उन्हें खत्म ही करना है, बल्कि जितनी भूख हो उतना ही खाना चाहिए, इस बात पर जोर दें।

★ भोजन थोड़ी-थोड़ी मात्रा में परोसें और खाते समय बच्चों को बातचीत में लगाए रखें और जहाँ तक हो सके उसे अकेला न खाने दें।

★ बच्चे को धीरे-धीरे खाने के लिए प्रोत्साहित करें। उसके लिए एक नियत स्थान पर भोजन करने की व्यवस्था करें।

★ मोटापा घटाने वाले भोजन के विषय में बच्चे को भी शिक्षा दीजिए। उसे खेलकूद, भाग-दौड़ आदि शारीरिक क्रियाओं के लिए प्रोत्साहित कीजिए।

बचपन में मोटापे से उनके बचाव और वजन पर नियंत्रण रखना अभिभावकों का कर्त्तव्य है। किसी डॉक्टर से वजन-नियंत्रण के सम्बन्ध में सलाह ले लेना उचित होगा, पर इसकी सफलता या असफलता अभिभावकों के प्रोत्साहन और प्रयास पर ही निर्भर करती है।

वास्तव में गरिष्ठ भोज्य पदार्थों और उनके प्रलोभनों से दूर रहना बच्चों और माता-पिता दोनों के लिए ही कठिन होता है। परन्तु फिर भी समझदारी और सावधानी से बच्चों की रुचियाँ सही दिशा में मोड़ने का प्रयत्न करके काफी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

## अन्य जरूरी बातें

बच्चों में बढ़ते मोटापे को रोकने के लिए निम्नांकित कुछ अन्य जरूरी बातों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए—

1. कहीं बच्चे की आदत बिगाड़ने में स्वयं आपका हाथ तो नहीं है, इस बात को भी जरूर परख लें। पहले 'ना' करके फिर बच्चे के जिद करने पर उसे चुप कराने के लिए 'हाँ' कहने वाले माता-पिता अपने बच्चे की आदत स्वयं ही बिगाड़ने में सहायक होते हैं। बच्चे के जिद करने पर बिना क्रोध किये हुए उसे समझाना भी माता-पिता के लिए जरूरी होता है।

2. गरिष्ठ खाद्य पदार्थ न खरीदें, न ही उन्हें घर पर रखें। अपने लिए छिपाकर तो बिल्कुल ही न खरीदें। इसके अलावा भोजन में रोचकता और विभिन्नता लाने के लिए कभी बर्फ पर जमे केले या सेव की 'जेली' (बगैर जायके की जिलेटिन और फल के गाढ़े रस से बनी हुई) व बाजार में उपलब्ध 'कोल्ड ड्रिंक्स' आदि के

बजाय बिना चीनी मिले फलों के रस और आइसक्रीम आदि घर में ही बच्चों को उपलब्ध हों।

3. अपने फ्रिज में घर की बनी हुई कुछ चीजें भी रखिए, जिन्हें आप ऐसे समय में इस्तेमाल कर सकें जब आपका मन खाना पकाने को न करे, ताकि उस समय पूड़ी, कचौड़ी या इसी प्रकार की अन्य गरिष्ठ चीजें जल्दी में बाजार से न खरीदनी पड़ें।

4. अपने बच्चों को अपने साथ खाना बनाने में सहायेता करने दें। यह एक अच्छा अवसर होता है, जबकि बच्चों को पौष्टिक भोजन के विषय में अच्छे तरीके से समझाया जा सकता है और बच्चे भी अपने हाथ का बना खाना खाकर खुशी महसूस करते हैं।

उक्त सुझावों का पालन करते हुए अभिभावकों को बच्चों की आयु के अनुसार एक निश्चित आहार योजना (जिसमें चिकने पदार्थ न हों) भी तैयार करनी चाहिए जो उन्हें मोटापे से बचा सकती हो।

❑

# बच्चों का आलस्य भगाएँ

शारीरिक और मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी स्कूल के कार्य में एक बालक सदैव पिछड़ा रहता था। जब उसके माता-पिता का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया गया तो पता चला कि उस बालक में दो बुरी आदतें थीं। एक तो यह कि वह किसी भी काम को समय पर अथवा उत्साहपूर्वक नहीं करता था, दूसरे वह भोजन के मामले में भी अनियमित था। जब जी चाहता, खा लेता था। किसी भी कार्य को उत्तम रीति से करने की आकांक्षा वह खो चुका था। कारण यह था कि सम्यक् रूप से कार्य करने की उचित शिक्षा उसे नहीं दी गयी थी और न उसके अन्दर इस बात का चाव पैदा किया गया था कि वह अपने दैनिक कार्यक्रम में अपनी शारीरिक क्षमताओं का अधिक-से-अधिक लाभ उठाये। उसमें 'महत्त्वाकांक्षा' नाम की चीज का एकदम अभाव था। उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं थी कि उसके विषय में कोई क्या सोचता है, कोई उसकी प्रशंसा करता है या नहीं।

## अच्छी आदतें : सफल जीवन

बाल्यावस्था में बालक के स्वभाव-निर्माण की ओर अभिभावकों द्वारा बहुत कम ध्यान दिया जाता है, प्राय: अभिभावक यह सोच लेते हैं, बच्चा ही तो है, जिन कार्यों में उसे खुशी मिलती है, करने दो। समझ आने पर खुद ही सँभल जाएगा। ऐसा सोचना, बच्चों को स्वयं में बुरी आदतों की नींव रखने की खुली छूट देना है। वस्तुत: आदतों से ही आदमी अच्छा बनता है। भली आदतों की ओर बच्चे को प्रेरित कीजिए, वह आगे चलकर अवश्य भला आदमी बनेगा। अच्छी आदतें डालने से बच्चे का आलस्य स्वत: ही जाता रहेगा।

बच्चों को आहार आदि की समुचित सुविधाएँ देने के साथ-साथ उनकी प्राकृतिक क्रियाओं को भी नियमित करने का प्रयास करना चाहिए। यदि नहाने, पानी पीने, मलोत्सर्ग करने से लेकर सोने-जागने तक की विभिन्न प्राकृतिक क्रियाओं में जरा भी उपेक्षा बरती जाती है तो शरीर के अन्दर विष बनने लगते हैं और हमारी कार्य क्षमता में कमी आ जाती है जिससे आलस्य उत्पन्न होता है।

## कारणों की खोज आवश्यक है

बहुधा देखा गया है कि कुछ अभिभावक बालक के आलसी होने की शिकायत करते हैं और डाँट-डपट से काम लेते हैं। फिर भी बालक क्रियाशील नहीं हो पाता क्योंकि उसके आलस्य का कारण बाहर नहीं, उसके अन्दर होता है। यानि अन्दर से जिस स्फूर्ति और शक्ति की उसे जरूरत होती है, वह किसी कारणवश उसे नहीं मिल पाती। इसलिए समझदार अभिभावकों को चाहिए कि अपने बालक के आलस्य का रोना-रोने से पूर्व यह देखें कि उसे किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट तो नहीं है।

एक निष्क्रिय बालक को मनोवैज्ञानिक उपचार के लिए लाया जाने पर एक मानसिक चिकित्सक ने पहले उसकी डॉक्टरी परीक्षा करवाई। पता चला कि बालक को 'डीनायड' नामक गले का रोग था। इस रोग के कारण उसकी श्वसन-प्रणाली में व्याघात पड़ता था और रक्त-शुद्धि के लिए ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा उसके शरीर में नहीं पहुँच पाती थी। परिणामतः उसके अन्दर लगातार 'विष' जमा होते रहे और उन्होंने बालक की शक्तियों को निष्क्रिय कर दिया।

इसी प्रकार, एक शिक्षित और सम्पन्न परिवार का एक बालक एक दम आलसी-सा लगता था। परन्तु जब उसके गले की गिल्टियाँ निकाल दी गयीं तो वह दूसरे बच्चों जैसा ही चुस्त और फुर्तीला हो गया।

## लक्षण देखते ही इलाज करें

बच्चों में आलस्य के लक्षण प्रकट होते ही उनकी ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और अविलम्ब उसके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ की जाँच करानी चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि बच्चों में आरम्भ से ही स्वच्छता और स्वास्थ्य की अच्छी आदतों को विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। बच्चों को मुख और दाँतों की सफाई से लेकर छींकने और खाँसने तक का शिष्टाचार सिखा देना, प्रत्येक माँ-बाप और अध्यापक का कर्त्तव्य है।

यदि बालक खेलकूद आदि में सामान्य बालकों की ही तरह हो, किन्तु काम से जी चुराता हो तो इसका तात्पर्य यह हो सकता है कि उसमें शारीरिक दोष कोई नहीं है, बल्कि कार्य के प्रति उसमें रुचि पैदा करने की आवश्यकता है। यह कार्य

तभी सम्भव है जब बच्चे के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए उसकी स्वाभाविक अभिरुचियों का पता लगाया जाय। यदि बच्चे की रुचि के अनुसार ही उसे दिये जाने वाले कार्य का चयन किया जाये तो कोई कारण नहीं कि हमें निराश होना पड़े।

कितने ही बालक ऐसे हैं जो वास्तव में आलसी नहीं होते, उनकी क्रियाशीलता में सुस्ती रहती है, किन्तु जहाँ उनको अपनी रुचि के अनुकूल क्षेत्र मिल जाता है वहीं इस सुस्तावस्था का अन्त हो जाता है। उनमें रचनात्मक क्षमता के चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। हो सकता है, आपके बालक (जिसे आप आलसी समझते हैं) के ऊपर भी यही बात चरितार्थ होती हो।

इस सम्बन्ध में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। वह है, माता–पिता का अपने बच्चों से पूर्ण मेलजोल और सहयोग। देखा जाए तो बालक भी एक सामाजिक प्राणी होता है। वह किसी कार्य में अकेलापन सहन नहीं कर पाता। यदि माता–पिता और शिक्षक, अभिभावक उनके कार्य में दिलचस्पी लें तो बच्चों को ज्यादा आनन्द आने लगेगा। उन्हें यह अनुभव नहीं होने पाएगा कि किसी कार्य विशेष में उन्हें अकेला छोड़ दिया गया है।

## पारस्परिक सहयोग करें

किसी ने कहा है—पुनर्निर्माण की अपेक्षा निर्माण ज्यादा सरल होता है। यदि माता–पिता आरम्भ से ही इस बात की चेष्टा करें कि उनकी सन्तान अच्छी बने और बाद में उन्हें पछतावा न करना पड़े तो उन्हें चाहिए कि प्रारम्भ से ही बच्चों को आलस्यहीन और सदाचारी बनने का मौका दें। बच्चे माता-पिता की हर–हरकत को बड़े गौर से देखते हैं। जिस प्रकार का आचरण माता–पिता का होता है, वैसा ही आचरण बच्चे अपना लेते हैं। आप चाहते हैं कि यदि आपके बच्चे पुरुषार्थी और चरित्रवान बनें तो आपको चाहिए कि आप अपना जीवन पुरुषार्थ के साँचे में ढालें और सदाचार के नियमों का पालन करें। निश्चित जानिए, आपके बच्चे भी आपकी आशा के अनुरूप पुरुषार्थी और चरित्रवान बनेंगे तथा आलस्य उनके करीब फटकने भी नहीं पाएगा।

❑

# जब उनसे बोलें-बतियाएँ

कोई भी अभिभावक यह नहीं चाहता कि उसके बच्चे उससे नाराज हों, किन्तु जाने-अनजाने अनेक बार ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि बच्चे जब अपनी इच्छा के अनुकूल व्यवहार नहीं पाते तो वे प्रायः नाराज हो उठते हैं।

जिन माता-पिता को अपने बच्चों से शिकायत है कि वे उनका कहना नहीं मानते, उन्हें चाहिए कि वे उनके साथ नये तरीके से बोलना-बतियाना शुरू करें। अगर आप घरों में बच्चों के साथ माता या पिता की बातों को ध्यान से सुनेंगे तो पायेंगे कि बहुधा वे एक-दूसरे की बात नहीं सुन रहे हैं। उनमें से एक व्यक्ति (माता या पिता) बच्चे को नसीहत दे रहा होगा या उसकी आलोचना कर रहा होगा और बच्चा किसी बात से इन्कार कर रहा होगा, या किसी बात के लिए जिद कर रहा होगा। बाल-मनोवैज्ञानिक बच्चों की इस नाराजगी का कारण माता-पिता में प्यार या व्यवहारकुशलता का अभाव बताते हैं।

एक दिन नौ साल का बच्चा गोपाल बड़े गुस्से में घर आया, क्योंकि वर्षा हो जाने के कारण उनकी कक्षा पिकनिक पर नहीं जा सकी थी। आमतौर पर जब वह नाराज होता था तो सारे घर को सिर पर उठा लेता था। पर इस बार उसकी माँ ने फैसला किया कि उसका गुस्सा ठण्डा करने के लिए पुरानी घिसी-पिटी बातें नहीं दुहरायेगी। उसने कहा—'तुम्हें तो सचमुच निराशा हुई है।'

'हाँ।' गोपाल ने कहा।

'तुम तो अच्छे-भले तैयार हुए थे, पर अचानक यह बारिश कैसे आ गयी?'

'हाँ! माँ फिर और क्या चारा था?' गोपाल ने कहा और एक-दो क्षणों के लिए चुप हो गया। फिर उसने कहा—'खैर, कोई बात नहीं, किसी और दिन सही।' कुछ देर बात उसका गुस्सा ठण्डा हो चुका था और वह दिन भर खेलने-कूदने में लगा रहा। माँ की अपनी व्यवहारकुशलता से बात टल गई। वह विशेष क्रोधित नहीं हुआ।

बच्चा जब बहुत ज्यादा भावुक होता है, वह अपनी बात पूरी तरह समझा नहीं पाता। लेकिन चाहता है कि उसे पूरी तरह समझा जाये। ऐसे में माता-पिता का फर्ज है कि उस पर नाराज होने के बजाय उसे समझने का प्रयत्न करें।

पाँच साल का एक लड़का जब पहली बार स्कूल गया तो कक्षा में टँगे हुए चित्रों को देखकर कहने लगा—'ये इतने खराब चित्र किसने बनाये हैं?'

तभी शिक्षिका ने लड़के की बात का मतलब समझते हुए मुस्कराकर कहा—'यहाँ हर कोई सुन्दर चित्र नहीं बनाता बेटे, तुम जैसे भी चित्र बनाने चाहो, बना सकते हो।'

यह सुनते ही लड़के के होंठों पर हल्की-सी मुस्कराहट आयी। उसे अपने मन में छिपे सवाल का जवाब मिल गया था।

वास्तव में, वह उन चित्रों को भद्दा कहकर—यह पूछना चाहता था कि अगर कोई लड़का अच्छे चित्र न बना पाये, तो उसका क्या होता है? उसे अपने बारे में डर था कि वह शायद अच्छे चित्र नहीं बना पायेगा। शिक्षिका ने उसका वह डर दूर कर दिया था।

बच्चे बहुत-से विषयों पर माता-पिता से बहस करना पसन्द नहीं करते। वे उपदेश, आलोचना अथवा नसीहतें सुनना तो बिल्कुल भी पसन्द नहीं करते। अगर माता-पिता को उन्हें कोई नसीहत देनी ही है, तो सबसे पहले उनके साथ आदर से पेश आना चाहिए। अगर बच्चा कहता है कि, 'मैं गणित में अच्छा नहीं हूँ', तो उसे इस प्रकार की नसीहत देना गलता है कि 'तुम्हें मेहनत करनी चाहिए। मेहनत करोगे, तो गणित में होशियार हो जाओगे।' ऐसी नसीहत से उसका विश्वास और कम होगा और विरोध बढ़ेगा। अतः उससे यह कहना चाहिए—'हाँ, गणित आसान विषय नहीं है। इसके लिए बहुत मेहनत की जरूरत होती है। शायद तुम्हें डर है कि तुम गणित में फेल हो गये तो हम नाराज होंगे। ऐसी बात नहीं है। अगर गणित पर थोड़ी-सी ज्यादा मेहनत करोगे, तो पास हो जाओगे।' आदि।

बच्चों के मन में अपने माता-पिता और शिक्षकों के लिए जहाँ प्यार होता है, वहाँ विरोध भी होता है। जहाँ वे उनकी इज्जत करते हैं, वहाँ उनसे घृणा भी करते हैं। इन परस्पर विरोधी भावनाओं को समझना जरूरी है। कई बार बच्चा जब माता-

पिता से नफरत कर रहा होता है तो वास्तव में वह उनका प्यार पाना चाह रहा होता है। प्यार न मिलने की हालत में वह उनसे नफरत करने लगता है, उनका विरोध करने लगता है।

बच्चों को किसी गलत काम से रोकने के लिए डाँटना या गुस्सा प्रकट करना काफी नहीं है, बल्कि इसका उलटा असर पड़ सकता है। अगर बच्चे को समझाया जाये कि उसका वह काम गलत क्यों है तो वह उसे आसानी से छोड़ देगा। बिना कारण बताये सिर्फ डाँटने से हो सकता है कि वह अपनी नाराजगी प्रकट करने के लिए उस काम को फिर से करने लग जाए और बार-बार दुहराये।

एक छोटी-सी लड़की अपने घर की दीवार पर रंग-बिरंगी पैंसिलों से कुछ लिख रही थी। माँ ने देखा तो उसे बेहद गुस्सा आया और उसे चाँटा मारने के लिए आगे बढ़ी। पर तभी बेटी का भयभीत चेहरा देखकर वह रुक गयी। फिर उसने गुस्से पर काबू पाते हुए उससे कहा—'दीवारें लिखने के लिए नहीं होतीं। लिखने के लिए कागज बनाया गया है। आओ, मैं तुम्हें कागज देती हूँ। जितने कागज चाहो, भरना।'

सुनते ही लड़की का भयभीत चेहरा नरम पड़ गया और उसने खुश होकर कहा—'तुम कितनी अच्छी हो माँ!'

शुरू में माँ गुस्से की हालत में लड़की से शायद कहती—'कैसा सत्यानाश कर दिया है दीवार का! क्या तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं है? मार-मार कर चमड़ी उधेड़ देनी चाहिए तुम्हारी! तब कहीं जाकर अक्ल आयेगी तुम्हें! ठहरो, आने दो तुम्हारे डैडी को! वे तुम्हारी चमड़ी उधेड़ेंगे!' इन बातों से लड़की के मन में डर के साथ घृणा भी भर जाती और सम्भवत: वह किसी और मौके पर दूसरी दीवारों पर फिर कुछ लिखती।

माता-पिता के लिए जरूरी है कि वे बच्चों के मन की भावनाओं को समझें और उनके स्तर पर आकर उनसे व्यवहार करें, उन्हें प्यार दें, उनके साथ आदर से पेश आयें। उन्हें विश्वास दिलायें कि उनके होते हुए उन्हें डरने की जरूरत कतई नहीं है।

❐

# बाल श्रमिकों की सुरक्षा

संयुक्त राष्ट्र संघ की 'मानवाधिकार घोषणा' के अनुसार मनुष्य द्वारा किया गया कार्य 'श्रम' है। श्रम कोई वस्तु या द्रव्य नहीं है। यह मानव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। श्रम द्वारा व्यक्ति सम्मान सहित जीने का अधिकार प्राप्त करता है। कार्य उसकी रचनात्मक वृत्ति व अहं की तुष्टि के साथ-साथ व्यक्तित्व-विकास का साधन बनता है। श्रम वही कर सकता है जो कार्य के अनुकूल क्षमता रखता है।

पूँजीवादी समाज व्यवस्था में जहाँ उत्पादन का लक्ष्य पूँजी बढ़ाना और अधिक-से-अधिक लाभ कमाना होता है, वहाँ कम-से-कम लागत में सस्ता श्रम खरीदने का प्रयास किया जाता है। इसीलिए गरीब तबके के बच्चे पूँजीवादी मशीन में अक्सर पिसते हुए देखे जाते हैं।

भारत के संविधान के अनुसार चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों से श्रम कराना कानूनी अपराध माना गया है। सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वह निम्न आर्थिक-वर्ग के बच्चों को अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करे। परन्तु जनसंख्या के अत्यधिक दबाव के कारण ऐसा सम्भव नहीं हो पा रहा है। जनसंख्या हर साल बेतहाशा बढ़ रही है और उसी अनुपात में गरीबी भी। ऐसे में यहाँ छोटे-छोटे हाथों वाले बच्चे काम के बदले धन कमा कर परिवार के लिए रोटी जुटाते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं।

उक्त समस्या केवल भारत की ही नहीं, बल्कि विश्व के समूचे अविकसित देशों की है जिसमें अफ्रीका, दक्षिण एशिया, चीन और मध्य अमेरिका आदि देशों की भी गिनती की जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संगठन के एक अनुमान के अनुसार विश्व भर में कोई 25 करोड़ बाल-श्रमिक हैं। इनमें से दस करोड़ से अधिक भारत में हैं। इस गणना में असंगठित और छोटे घरेलू कार्यों में लगे बाल-बालिका मजदूर शामिल नहीं हैं।

## बाल-श्रमिकों का वर्गीकरण और दशा

भारत के बाल-श्रमिकों का लगभग 30 प्रतिशत खेतिहर मजदूर हैं। 30 से 35 प्रतिशत बाल-श्रमिक कल-कारखानों में लगे हैं। लगभग 30 प्रतिशत ही खानों व लघु उद्योगों में हैं और शेष लगभग 10 प्रतिशत चाय की दुकानों, ढाबों और घरेलू नौकरों आदि के रूप में कार्य करते हैं। इनका जीवन पुराने जमाने के गुलामों अथवा बन्धुआ मजदूरों जैसा है।

भारत में बाल-श्रम रोकने के लिए कानून है पर उससे बच निकलने के इतने मार्ग हैं कि कानून प्रायः किताबों की ही शोभा बढ़ाता रह जाता है और नन्हे-मुन्ने बच्चे नरक के समान जीवन जीने को मजबूर हो जाते हैं। गर्मी, घुटन और धुएँ से भरी, अँधेरों से ढँकी चारदीवारी में लगभग 12-14 घण्टे लगातार झुके हुए भट्टी झौंकना, काँच फुलाना, लोहे पर हथौड़ा चलाना, ऊन का काम करना, बारीक चिकन की कढ़ाई करना तथा चमड़ा कमाना, जिसमें रसायनों से हाथ तक झुलस जाते हैं, ऐसे काम उन्हें करने पड़ते हैं।

श्रम मंत्रालय भारत सरकार की एक वार्षिक रिपोर्ट (89-90) में कहा गया है कि भारत के बाल-श्रमिक सबसे कम सुविधा प्राप्त हैं तथा सबसे अधिक शोषित-वर्ग में गिने जाते हैं। ये असंगठित हैं और इनके कौशल का स्तर नीचा होने के कारण इन्हें कम मजदूरी पर काम करना पड़ता है।

## बाल-श्रमिक कानून की स्थिति

भारत में बाल-श्रमिक (निषेध व नियमन) अधिनियम 1986 में बना था और 1988 में उसे अधिसूचित किया गया। इस कानून के अनुसार 6 व्यवसाय और 14 उपक्रम ऐसे हैं जिनमें बच्चों को रोजगार पर लगाना प्रतिबन्धित है। ये अधिकतर **जोखिम वाले काम हैं, पर इस कानून का कड़ाई से पालन नहीं हो रहा है।** इस कानून के अनुसार ऐसा प्रावधान है कि यदि बच्चों को काम पर लगाया जाए तो निम्नांकित निषेधों का ध्यान रखा जाए—

✯ साढ़े चार घण्टे से अधिक समय काम करने पर बाल-श्रमिक को अतिरिक्त मजदूरी दी जाए।

✯ रात में बाल-श्रमिक से काम नहीं लिया जाए।

★ बालक अनितार्य रूप से शिक्षा पाएँ।

★ बाल-श्रमिकों को अन्य कर्मचारियों की तरह ही साप्ताहिक तथा अन्य छुट्टियाँ देने का प्रावधान किया जाए।

भारत सरकार ने बाल-श्रमिकों के सम्बन्ध में एक राष्ट्रीय नीति भी तैयार की है। इस नीति के अन्तर्गत भी अनेक निषेध किए गए हैं।

बाल-श्रमिकों की समस्या अब हमारे देश में विकराल रूप ले चुकी है। इसके हल के लिए केवल सरकारी प्रयास काफी नहीं हैं। सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं को मिल-जुल कर आगे आना चाहिए। इस हेतु यहाँ कुछ सुझाव दिए जा रहे हैं—

★ बाल-श्रमिकों के लिए विशेष स्कूलों की व्यवस्था की जाए जहाँ उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही विशेष व्यवसाय का प्रशिक्षण भी दिया जा सके ताकि वे पीढ़ियों से चले आ रहे अपने हस्तशिल्प का लाभ उठा सकें।

★ जोखिम भरे उद्योगों से बाल-श्रमिकों को हटा कर उनके लिए प्रशिक्षण एवं पुनर्वास की समुचित व्यवस्था की जाए तथा उन्हें पर्याप्त भत्ता दिया जाए।

★ बाल-श्रमिकों के परिवारों को गरीबी निवारण योजना के अन्तर्गत लाया जाए।

★ बाल-श्रमिकों को निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा कानून का सख्ती से पालन किया जाए।

★ बाल-श्रमिकों के लिए विशेष स्कूल खोले जाएँ जो उद्योगों तथा बस्तियों के पास हों। उनमें 100 के लगभग बच्चों पर एक प्रशिक्षित शिक्षक हो। सिद्धान्त पर कम और कार्य पर अधिक ध्यान दिया जाए। व्यवसायिक प्रशिक्षण भी साथ-साथ चले।

बाल-श्रमिकों को राहत दिलाने में स्वयंसेवी संगठन अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। भारत में बाल-श्रमिकों के प्रति चेतना अथवा जागृति बहुत कम है, उसे जगाया जा सकता है। स्वयं बाल-श्रमिकों के संगठन बनाकर उन्हें समाज के जागरूक कार्यकर्त्ताओं द्वारा निर्देशित किया जा सकता है।

अज्ञान, गरीबी और अशिक्षा के कारण अनेक परिवार बच्चों को परिपक्व होने से पूर्व ही कठोर श्रम में लगा देते हैं। कमाने वाले हाथों की चिन्ता को ओढ़ कर अनेक गरीब परिवार अधिक बच्चे पैदा कर रहे हैं। उन्हें परिवार कल्याण के वास्तविक उद्देश्य से परिचित कराया जाना उचित होगा। गरीब परिवारों तथा श्रमिक-बच्चों को शिक्षा की विशेष व्यवस्था से जोड़ना होगा।

सरकार, कानून तथा संगठनों के प्रयासों से बाल-श्रमिकों की दशा में तेजी के साथ सुधार लाया जा सकता है।

❐

# चोरी की गलत प्रवृत्ति

छोटे-बड़े बच्चों की अनेक प्रकार की भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक समस्याएँ माता-पिता के सामने प्रतिदिन आती रहती हैं। इनमें से एक है चोरी की समस्या। यों तो बच्चों के साथ चोरी जैसा शब्द जोड़ना कुछ ठीक नहीं लगता, लेकिन इस पर विचार करना बहुत जरूरी है। बच्चों में चोरी जैसी समस्या का यदि समाधान नहीं ढूँढा गया, उसका प्रतिकार न किया गया तो बच्चा बड़ा होकर पक्का चोर बन सकता है।

बच्चे चोरी क्यों करते हैं? यह एक अहम प्रश्न है। यहाँ इस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयत्न किया जा रहा है। वस्तुत: बच्चों में संग्रह की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से होती है। जो भी वस्तु उनके पास नहीं है और यदि वह उन्हें भाने लगे तो वे उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, चाहे उसके लिए उन्हें चोरी ही क्यों न करनी पड़े। किसी विशेष वस्तु के प्रति आकर्षण के कारण बच्चे कभी-कभी चोरी करने की ओर प्रवृत्त होते हैं।

कहीं कुछ दिखाने या रोब जमाने के लिए भी बच्चे चोरी कर बैठते हैं। कोई चीज महँगी हो या देखने में बहुत अच्छी हो तो भी बच्चे उसे अपने पास रखना पसन्द करते हैं।

## एक अहम प्रश्न

ऐसे ही अनेक उदाहरणों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि स्कूल जाने को उम्र से पहले और बाद दोनों ही उम्र के बच्चे एक प्रबल आकर्षण के तहत दूसरों की चीजें उठाते हैं। बाल-बद्धि से वे यह सोच बैठते हैं कि शायद उठाई हुई चीज उसके मालिक के लिए बेकार है या उठा लेने से किसी का कोई नुकसान नहीं होने वाला। इस तरह के विचार रखने वाले बच्चों को चोर कहने या उनके काम को चोरी कहने का मन नहीं होता, लेकिन यह भी नहीं हो सकता कि उन्हें बिना सुधारे यूँ ही छोड़ दिया जाए। यह काम केवल अभावग्रस्त परिवारों के बच्चे ही नहीं करते बल्कि भरे-पूरे परिवारों के बच्चे भी इस प्रकार के काम कर बैठते हैं। कभी अपूर्व आकर्षण के कारण, कभी 'फैण्टम' और 'मैन्ड्रक' की तरह साहसिकता का प्रदर्शन करने के लिए और कभी मात्र संग्रह की कामना से बच्चे चोरी करने लगते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या उनकी ऐसी नन्हीं और भोली हरकतों को नजरअन्दाज किया जा सकता है? क्या उन्हें ऐसे काम के लिए बढ़ावा देना चाहिए। उत्तर है कि ऐसे कार्य के लिए उन्हें न तो बढ़ावा देना चाहिए, न अनदेखा करके छोड़ देना चाहिए। क्योंकि कड़वे बीज पनपने देने से तो कड़वे फल ही मिलेंगे। एक जानी मानी कहानी है कि एक माँ ने अपने बेटे को पड़ौस से एक बार कुछ चुरा कर लाने पर दण्ड नहीं दिया बल्कि 'मेरा बेटा बड़ा चतुर है।' ऐसा कहकर उसे उत्साहित किया। लेकिन उसकी इसी आदत ने बेटे को एक दिन सीखचों के पीछे खड़ा कर दिया। जब माँ आँसू बहाती हुई उससे मिलने गयी तो बेटे ने अपने चोर बनने का जिम्मेदार माँ को ही ठहराया। अत: समय पर सुधार करके हम इस कुप्रवृत्ति को पनपने से रोक देंगे तो यह बच्चों के हित में होगा। लेकिन यह कार्य इतनी सावधानी से किया जाना चाहिए कि उसकी वह प्रवृत्ति एक स्वस्थ रूप में विकसित हो सके।

## पैसों का प्रलोभन

एक और बात, पैसों का प्रलोभन भी कभी-कभी बच्चों को चोरी की ओर प्रवृत्त करता है। स्कूल जाने वाला बच्चा धीरे-धीरे पैसों के जादू को समझने लगता है। आज के भौतिक युग में बच्चे बड़ी जल्दी पैसों के मूल्य को पहचान जाते हैं क्योंकि पैसे से वे मनचाही चीज खरीद सकते हैं। चाहे वो खाने-पीने की चीजें, जैसे—आइसक्रीम, चॉकलेट, टाफी, नमकीन या चाट ही क्यों न हो।

पैसे से मनचाहे खिलौने या कॉमिक्स भी खरीदे जा सकते हैं। आमतौर पर मध्यम-वर्गीय माता-पिता इन चीजों के लिए अधिक या रोज-रोज पैसा नहीं दे पाते और जब बच्चे उन्हें खरीद लेते हैं तो खरीददारी पर बिगड़ते हैं। जिन घरों में बहुत कंजूसी बरती जाती है वहाँ अक्सर बच्चे पैसा चुराने लगते हैं। उन्हें मनचाही चीजें खरीदने के लिए चोरी का सहारा लेना पड़ता है। बच्चा चोरी के साथ सही और गलत के भाव को बिना जोड़े हुए, माता-पिता या साथियों की जेब से पैसा निकाल लेता है। कई बार बच्चा बड़ा होकर स्वयं भी अपनी गलती समझकर उसमें सुधार कर सकता है। फिर भी अभिभावकों को इस दिशा में सजग होकर उसका प्रतिकार करना चाहिए।

## चोरी छुड़ाने के कुछ उपाय

बच्चों में चोरी की आदत छुड़ाने के लिए यहाँ कुछ व्यावहारिक बिन्दु दिए जा रहे हैं। इन्हें अमल में लाकर हम सफल हो सकते हैं—

★ चोरी की आदत वाले बच्चों को घर और स्कूल दोनों में ही कुछ जिम्मेदारी सौंपनी चाहिए। घर में बच्चों से अक्सर छोटी-मोटी खरीददारी आदि करवाते रहना

चाहिए और उनसे हिसाब लेना चाहिए। ऐसे बच्चों को कक्षा का मॉनीटर भी बनाया जा सकता है।

✯ कक्षा या घर की चीजों की देखभाल का काम भी ऐसे बच्चों को सौंपना चाहिए। उनके साथियों के बारे में भी पता लगाना चाहिए कि वे किन परिवारों के हैं। यदि दोस्त हमारे बच्चों के आर्थिक स्तर के न हों तो उन्हें समझाइये कि दोस्ती बराबर वालों से ही करें। सौ–पचास रुपया प्रतिदिन खर्च करने वाले बच्चों से दोस्ती करके आपका बच्चा हीन–भावना से ग्रस्त होकर गलत तरीके से पैसे प्राप्त करने की कोशिश कर सकता है।

✯ अपने बच्चों की प्रत्येक आवश्यकता का पता लगाइये और जहाँ तक सम्भव हो उसके किसी विशेष आकर्षण को पूरा करने का प्रयास अवश्य कीजिए।

✯ अपने बच्चों से सामान्यत: अपनी आय के साधन मत छिपाइये और उसे हैसियत के अनुसार 'पॉकिट मनी' देकर उसका उचित उपयोग सिखाइये। उसे यह कहकर समझाइये कि यदि कोई तुम्हारी चीज ले ले तो तुम्हें कैसा लगेगा, क्या तुम सहन कर लोगे? यदि नहीं तो दूसरा भी क्यों सहन करेगा?

✯ चोरी क्यों की गई है, इसका पता लगाने का प्रयत्न सहानुभूति एवं प्रेम द्वारा ही सम्भव है। उत्तेजित होकर आप अच्छे परिणाम प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा करने से कभी–कभी ही लाभ होता है।

✯ अपने बच्चों को स्वस्थ साहित्य पढ़ने को दीजिए जिसमें सुन्दर कहानियों द्वारा शिक्षा दी जाती हो कि चोरी इत्यादि गलत कार्यों से चरित्र खराब होता है और ऐसा काम करने वाले को कठोर दण्ड मिलता है।

✯ बच्चों को सदा सृजनात्मक कार्यों में लगाने का प्रयास कीजिए, जैसे—घर के कामों में मदद, बागवानी, हस्तकला, स्वास्थ्यवर्धक खेलों का अभ्यास, छोटे–मोटे सामाजिक कार्य इत्यादि।

✯ चोरी की बुरी आदत को छुड़ाने में माँ–बाप को जिम्मेदारी तथा सावधानी से काम लेना चाहिए। उन्हें अपनी आँखें और कान खुले रखने चाहिए। प्रेम तथा सहानुभूति से चोरी के कारणों का पता लगाकर इस बुरी आदत को छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। शिकायत आने पर बच्चे का पक्ष लेकर उसे प्रोत्साहित न किया जाए। पर्याप्त सावधानी बरतने और उपयुक्त प्रयास करने से बच्चों की यह आदत अवश्य छूट जायेगी।

❐

# भीख के निकृष्ट काम में लगे बच्चे

विदेशों के मुकाबले भारत में भिखारियों की संख्या व समस्या दोनों ही उग्र रूप में मौजूद है और निरन्तर उग्रतर होती जा रही है। यह विशेष चिन्ता पैदा करने वाली बात है।

भारत के प्राय: प्रत्येक मन्दिर, रेलवे स्टेशन, तीर्थ-स्थल, पर्यटन-स्थल अथवा मेले में हमें बाल-भिखारियों के झुण्ड-के-झुण्ड दिखाई दे जाते हैं जो हमारी समाज व्यवस्था का अत्यन्त निराशाजनक रूप सामने रखते हैं।

इस दिशा में सुधार लाने के ठोस और कारगर प्रयास न तो देश के नेताओं द्वारा किए जा रहे हैं और न समाज सेवकों द्वारा। अनेक समाजशास्त्री तो भारत में बाल-भिखारियों की समस्या को बुनियादी समस्या ही नहीं मानते।

बच्चों द्वारा भीख माँगना या उन्हें भिक्षावृत्ति के लिए प्रेरित करना कानूनी अपराध है। किन्तु इस अपराध की रोकथाम मात्र कुछ भिखारी बच्चों को पकड़ कर जेल में डाल देने से नहीं हो सकती, अपितु इस सामाजिक बुराई के विरुद्ध व्यापक स्तर पर लड़ाई लड़ने से ही इस समस्या का हल सम्भव है।

## चार प्रमुख श्रेणियाँ

हमारे देश में भीख माँगने वाले बच्चों को साधारणत: चार प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इन बच्चों की उम्र प्राय: चार से लेकर चौदह वर्ष तक पाई गई है। यह संख्या देश के कुल भिखारियों की बीस प्रतिशत के लगभग है। इन भिखारियों में वे बच्चे शामिल नहीं हैं जो अपने परिवार की आय बढ़ाने के लिए भीख माँगते हैं; इनमें नट, बाजीगर व सपेरे गिने जा सकते हैं।

बाल-भिखारियों में सबसे पहली श्रेणी उन बच्चों की है जिनको उनके माँ-बाप सिर्फ इसीलिए पैदा करते हैं कि वे भीख माँग कर लाएँगे और उन्हें खिलाएँगे। ऐसे लोग अपने बच्चों को अपने साथ भी रखते हैं तथा उन्हीं से भीख माँगने को कहते हैं। इनकी औरतें भी प्राय: अपने नवजात शिशुओं की दुहाई देकर राहगीरों से पैसे माँगना शुरू कर देती हैं ताकि राहगीर सहज ही तरस खाकर आठ आना-रुपया दे

जाता है। भीख माँगने का यह एक आसान और नया तरीका प्रायः सभी नगरों में देखने को मिलता है।

दूसरी श्रेणी में वे भिखारी बच्चे आते हैं जिन्हें घुमन्तू साधु या आपराधी अपहरणकर्त्ता ले जाते हैं और गेरुए वस्त्र पहनाकर या उनके अंग-भंग करके भीख मँगवाते हैं ताकि राहगीर उन पर तरस खाकर उन्हें भीख देने पर मजबूर हो जाय। ये साधु और दुष्ट अपहरणकर्त्ता बच्चों को ऐसा अपंग व निकम्मा कर देते हैं जिससे वे बच्चे भीख माँगने के अलावा कोई भी काम नहीं कर सकते। नए अपहरण करके लाए गए बच्चों के लिए वे उदाहरण बनाए जाते हैं। इन अपंगों को दिखाकर नये बच्चों के मन में यह भय बैठा दिया जाता है कि अगर उन्होंने कहे अनुसार काम न किया तो उनकी भी यही दशा होगी। यदि कोई बालक इनसे बच निकलने की कोशिश करता है तो उसे अन्धा कर देने या उसके हाथ-पैर बेकार कर देने जैसी अमानवीय सजा भी उन्हें अन्य सब बच्चों के सामने दी जाती है। इस डर से दूसरे बच्चे न तो पुलिस को उनके गिरोह का अता-पता बताने की हिम्मत कर पाते हैं और न उनके चंगुल से निकलने की बात सोच पाते हैं।

ऐसे अपहरणकर्त्ता लोग या साधु वेशधारी समूचे देश में बड़ी संख्या में कार्यरत हैं। ये लोग भिखारी बच्चों को चाकू, छुरी आदि का भय दिखाकर उन्हें भागने का मौका नहीं देते हैं। बच्चों की दिनभर की मेहनत का पैसा इकट्ठा करके उन्हें रुखा-सूखा खिला दिया जाता है। अक्सर नशीली चीजों का सेवन कराकर उन्हें निकम्मा करने के प्रयास भी किए जाते हैं।

तीसरी श्रेणी में वे बाल-भिखारी गिने जाने चाहियें जिन्हें कुछ अपराधी लोग आदिवासी क्षेत्रों अथवा पहाड़ी जगहों से उनके अभिभावकों से पचास-साठ रुपये में खरीद लेते हैं और फिर उन्हें भीख माँगने वाले साधुओं या अपहरणकर्त्ताओं को बेच देते हैं। ये उनसे अच्छी खासी रकम प्राप्त कर लेते हैं। कई लोग अभिभावकों से उनके बच्चे कुछ वर्षों के लिए ठेके पर भी ले लेते हैं और उतने ही वर्षों के लिए किसी अन्य व्यक्ति को बेच कर कुछ अधिक रुपया कमा लेते हैं। बच्चों के गरीब माँ-बाप उनके लालन-पालन की जिम्मेदारी से मुक्त होने की दृष्टि से ठेकेदारों को दे देते हैं और ठेकेदार उन्हें साधारण-सा खाना खिलाकर उनसे अनेक गलत कार्य करवा कर पैसा ऐंठते रहते हैं। वे उन बच्चों को भी खुश करने के लिए हाथ खर्च के रूप में कुछ रकम देते रहते हैं। इस प्रकार वे उन बच्चों को अपनी आमदनी का अच्छा साधन बना लेते हैं।

बड़े शहरों में आपको कुछ इस तरह के बच्चे भी दिखाई दे जाएँगे जो अपने परिवार के साथ बाजार में नाच-गाकर पैसा इकट्ठा करते हैं। कुछ बच्चे अमीरों की कारों के शीशे साफ करके तथा बाजार से उनके द्वारा खरीदे गए सामान को उनकी कारों तक पहुँचा कर बख्शीश के रूप में अच्छी रकम प्राप्त कर लेते हैं। पर्यटकों को सही रास्ता दिखा कर उन्हें नई जगह की जानकारियाँ देकर पैसा प्राप्त करने वाले ये बच्चे अन्य बाल भिखारियों की अपेक्षा आय का अच्छा साधन अपनाए हुए हैं। ये चौथी श्रेणी में गिने जा सकते हैं।

## देशवासियों का कर्त्तव्य

सभी श्रेणियों के इन बाल-भिखारियों को भीख के निकृष्ट धन्धे से निकालना प्रत्येक देशवासी का प्राथमिक कर्त्तव्य है। आज के बच्चे कल के नागरिक और देश के भविष्य की आशा हैं। अतः उनका भीख के जघन्य कार्य में लगे रहना देश के भविष्य के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हो सकता है। जागरूक नागरिकों के सहयोग से सरकार को इस दिशा में कठोर-से-कठोर कदम उठाने चाहिए।

भारतीय संविधान के अनुसार भिक्षावृत्ति एक कानूनी अपराध है। भिखारियों के लिए देश भर में सरकार की ओर से भिक्षुक-गृहों एवं समाज-कल्याण-गृहों की स्थापना की गई है किन्तु कड़ी निगरानी व नियंत्रण के अभाव में वहाँ से भिखारी अक्सर भाग जाते हैं।

बाल भिखारियों सही रास्ते पर लाने के लिए सरकार ने अन्य बहुत-सी सुविधाएँ कर रखी हैं। किन्तु धन के लोभी और समाज के दुश्मन बच्चों को गलत राह अपनाने के लिए मजबूर किए रहते हैं। इस दिशा में सरकार कड़ा रुख अपनाकर बाल-भिखारियों के ठेकेदारों, मालिकों और अपहरणकर्त्ताओं के विरुद्ध कार्यवाही कर सकती हैं। देश के नागरिक भी इस कार्य में सरकार की सहायता कर सकते हैं। लोग इन अपराधियों के अड्डों तथा गलत कार्य का पता लगाकर पुलिस को सूचित कर सकते हैं।

बच्चे देश की धरोहर हैं। मजबूर भिखारी बच्चों को अपने ही परिवार का सदस्य समझकर उन्हें अपराधियों के चंगुल से निकालना प्रत्येक देशवासी का कर्त्तव्य है। हम सबको इस बात का संकल्प करना चहिए कि बाल-भिखारियों के फैले हुए हाथों के पीछे जो मजबूरी है उसका पता लगाएँ तथा उन्हें इस जघन्य कार्य से मुक्ति दिलाने का हरसम्भव प्रयास करें।

❐

# दुर्घटना से पहले सावधानी

अभिभावकों की असावधानी के कारण घरों व सड़कों पर आए दिन छोटे-छोटे बच्चे बहुत-सी दुर्घटनाओं के शिकार होते रहते हैं। इन हादसों में अनेक बार इन नन्हें-मुन्नों की जान तक चली जाती है। बच्चे स्वभाव से जोशीले, ताकतवर और खोजी होते हैं। उन्हें हर वस्तु को मुँह में रखने, हाथ लगाने और सूँखने की तीव्र इच्छा होती है। उनकी यही इच्छा अनेक बार उनके लिए जानलेवा साबित हो सकती है।

अच्छे माता-पिता का यह दायित्व है कि वे अपने बच्चों में सुरक्षा की आदतें डालें और अपने बच्चों को छोटी-बड़ी दुर्घटनाओं से बचाएँ। इस दिशा में थोड़ी-सी लापरवाही भी बच्चे के लिए काफी खतरनाक हो सकती है। कई बार वह स्थायी दुष्परिणाम का कारण बन सकती है।

बच्चों को कभी भी अकेला मत छोड़िए। अगर मजबूरन छोड़ना ही पड़े तो उसे खिलौनों के संग किसी ऊँची चारदीवारी वाली जगह में छोड़िए। जहाँ से बच्चे का गिरना असम्भव हो।

## सही खिलौनों का चुनाव

छोटे बच्चे के लिए खिलौनों का चुनाव बहुत ही समझदारी से करना चाहिए। लकड़ी, लोहे और रबड़ के बने खिलौने छोटे बच्चों को नहीं देने चाहिए, क्योंकि जब भी बच्चे इन खिलौनों को मुँह में डालते हैं तो उनके ऊपर किया हुआ रंग बच्चों के पेट के अन्दर चला जाता है जो बहुत हानिकारक है। कई बार खिलौनों के नुकीले हिस्से बच्चों की आँख व मुँह में लग सकते हैं। वे प्लास्टिक के खिलौनों के टूटे हुए टुकड़ों को निगल सकते हैं। इसी कारण छोटे बच्चों को रुई से भरे कपड़े के खिलौने ही देने चाहिए। जैसे ही बच्चा बड़ा और समझदार हो जाए उसे दूसरी चीजों के बने खिलौने दिए जा सकते हैं।

## रसोईघर में न जाने दें

जब माँ रसोई में व्यस्त हो तो बच्चे को रसोईघर में नहीं जाने देना चाहिए, क्योंकि माँ का ध्यान खाना बनाने की तरफ अधिक और बच्चे की तरफ कम होता है। बच्चा माँ को प्यार करने के लिए माँ से लिपटता है या उसकी गोदी में बैठता है। वह अनजाने में किसी उबलती हुई वस्तु, गर्म बर्तन को छूकर अथवा अन्य किसी चीज से जल सकता है। रसोईघर में पड़े चाकू व दियासलाई को भी बच्चों की पहुँच से दूर रखना चाहिए क्योंकि ये उसके लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं।

किसी भी प्रकार के तेज औजार, जैसे—कैंची, ब्लेड, चाकू, दाँतरी, सूइयाँ, पिन और सलाइयों आदि-आदि से भी बच्चों को दूर रखें। वे उन्हें हाथ नहीं लगाने पाएँ। उनसे बच्चों को चोट आने, कटने, चुभने का डर रहता है। पैसे, बटन, हुक और मनकी के दाने आदि भी बच्चे की पहुँच से बाहर होने चाहिएँ। इन चीजों को बच्चा नाक या गले में फँसा सकता है। अगर ऐसा हो जाये तो बच्चे को फौरन डाक्टर के पास ले जाना चाहिए। स्वयं नीम हकीम बनने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

विषैले पदार्थ बच्चे की पहुँच में कतई नहीं रखने चाहिएँ। घर में पड़े मिट्टी के तेल को बच्चा अनेक बार गलती से पानी समझकर पीने लगता है। इसलिए मिट्टी के तेल की बोतल, समय-समय पर काम में आने वाली दवाइयाँ, जैसे—फिनाइल, टिंचर आयोडीन, खाने वाली दवाई की गोलियाँ और गर्म कपड़ों को कीड़ों से बचाने वाली नेफ्थलीन की गोलियाँ, चूहे मारने वाली गोलियाँ आदि को ऐसे स्थानों पर रखें जहाँ बच्चों की पहुँच असम्भव हो।

घर में रखे पालतू जानवर, जैसे—कुत्ता, बिल्ली आदि भी कई बार बच्चों को रोगी बनाने के कारण बन जाते हैं। इसलिए इन जानवरों को साफ और टीकों द्वारा निरोग रखना चाहिए। अन्यथा उन्हें बच्चों से दूर रखना ठीक होगा।

घर में पानी से भरे 'हौज', 'टब' व बाल्टी की तरफ बच्चे आकर्षित हो सकते हैं। उनकी वजह से गम्भीर दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। इसलिए इन चीजों को सदा ढक कर रखें।

बच्चे को कभी भी सीढ़ियों में, खिड़की के पास, घर के दरवाजे पर व छत पर अकेला न छोड़ें। सीढ़ियों में रात को हमेशा रोशनी होनी चाहिए। बच्चों को

सीढ़ियाँ चढ़ते–उतरते समय रेलिंग का सहारा लेना सिखा कर दुर्घटनाओं से बचाया जा सकता है। फर्श और सीढ़ियाँ सदा साफ रखें क्योंकि यदि उन पर सामान बिखरा होगा तो बच्चा ठोकर खाकर गिर सकता है।

बिजली की नंगी तारें और बटन आदि बच्चे की पहुँच से बिल्कुल बाहर होने चाहिएँ। क्योंकि अगर ऐसा न होगा तो बच्चे अनजाने में अपनी अँगुली या धातु से बनी किसी चीज को उनमें डाल सकते हैं और करंट लगने से बच्चे की जान जा सकती है। इसलिए बिजली के बटनों का जब प्रयोग न करना हो तो उन पर टेप लगा कर रखें। बिजली से प्रयोग में लाने वाला सामान, जैसे—हीटर, प्रेस, पंखा, ओवन आदि का प्रयोग करते समय उन्हें किसी ऊँचे स्थान पर रखें जो बच्चों की पहुँच से बाहर हो।

बच्चे को अकेले सड़क पार न करने दें। जैसे ही वह बड़ा हो जाए उसे सड़क पार करने के नियम सिखाएँ। मेले, बाजार और भीड़–भाड़ वाले स्थानों पर बच्चों को ले जाने का कष्ट न करें। अगर वह न माने तो कभी भी यह न भूलें कि बच्चा आपके साथ है। उसे बहुत ध्यान से हाथ पकड़ कर ले जाएँ।

थोड़ी–सी दूरदर्शिता, देखभाल व सावधानी के साथ उक्त बातों की तरफ ध्यान देकर माता–पिता अपने बच्चों को दुर्घटनाओं से बचा सकते हैं।

❐

# समाज के लिए घातक है बाल-विवाह

भारतीय समाज किसी युग में कितना ही समृद्ध क्यों न रहा हो, उसमें बाल-विवाह, दहेज-प्रथा, जातिभेद व छुआछूत जैसी कुप्रथाएँ हमेशा अपनी जड़ें जमाए रही हैं। आए दिन किसी-न-किसी जगह पर बाल-विवाह होते रहते हैं। अनेक नगरों में सामूहिक-विवाह के नाम पर भी सैकड़ों अबोध बालक-बालिकाओं को विवाह बन्धन में बाँधकर अपरिपक्व उम्र में यौनाचरण के लिए मजबूर कर दिया जाता है। रूढ़िवादी अभिभावक अपने बच्चों को ऐसी अवस्था में विवाह जैसी महती जिम्मेदारी थमा देते हैं जबकि उनके हाथों में खिलौने और मुँह में किलकारियाँ होनी चाहिए। इन अन्धविश्वासी अभिभावकों पर किसी की भी बात का असर नहीं होता। उन्हें अपनी थोथी, मान्यताओं से डिगाना बहुत मुश्किल होता है।

## अभिभावकों के थोथे तर्क

असमय ही अपने बच्चों को बाल-विवाह की आग में झोंकने वाले परम्परावादी अभिभावक प्रायः यह तर्क देते हुए दिखाई देते हैं कि बचपन में ही बच्चों का विवाह तय कर देने से आदमी यथा समय अपनी सामाजिक जिम्मेदारी से मुक्त हो जाता है। सम्बन्ध परिचितों, मित्रों और सजातीय लोगों में हो जाता है। कम आयु में बच्चों के विवाह की जटिल जिम्मेदारी से मुक्त होकर आदमी अपना बुढ़ापा आराम से काट सकता है। हो सकता है बच्चों के बड़े हो जाने पर उन्हें उपयुक्त साथी न मिल पाए; फिर बच्चा भी ऐसे मामले में अपनी टाँग अड़ाने लगता है, सो ठीक नहीं। मजबूरी में अगर विजातीय विवाह भी करना पड़ जाए तो अभिभावक की इज्जत मिट्टी में मिल जाती है।

उपर्युक्त किस्म के दकियानूसी और रूढ़िवादी विचार रखने वाले लोग न तो बच्चों को शारीरिक दृष्टि से विवाह-योग्य होने देना पसन्द करते हैं और न वैचारिक दृष्टि से। बच्चों की अपनी राय को तो वे किंचित् भी तरजीह नहीं देना चाहते।

एक जमाना था जब सामाजिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से बाल-विवाह करना कदाचित् कुछ अभिभावकों की मजबूरी रही होगी। बाल-विवाह कर देने के कुछ आर्थिक कारण भी थे। क्योंकि वैवाहिक प्रथा को सम्पन्न करने के लिए उन दिनों बहुत-सा धन खर्च करना पड़ता था। घर-बाहर के लोगों को बहुत-सा लेन-देन मकान की लिपाई-पुताई, पूरे गाँव का भोजन आदि में खर्च करते-करते आदमी आर्थिक दृष्टि से पंगु हो जाता था। अतः अपने कुछ मित्रों, परिचितों से पूर्व बातचीत करके बचपन में ही कुछ बच्चों के विवाह की बात सोची गई होगी।

## स्थितियाँ बदल गई हैं

पुराने समय में आदमी और समाज की जो भी स्थितियाँ रही हों, आज उनमें से एक भी स्थिति नहीं है। आज न तो व्यक्ति पूर्णतः अशिक्षित है और न उसे किसी का भय है। विवाह के सम्बन्ध में अनेक कानून बनाकर सरकार ने उसे पूर्ण सुरक्षा प्रदान की है। आज कोई भी व्यक्ति 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व अपनी लड़की और 21 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले अपने लड़के की शादी करने के लिए मजबूर नहीं है। यदि कोई ऐसा करने के लिए दबाव डालता है तो कानून उसकी सुरक्षा करता है। दहेज लेना और देना दोनों ही सामाजिक अपराध की श्रेणी में आते हैं जिसको अपनाने से सजा का प्रावधान है।

आज अधिकांशतः—अभिभावक और बच्चे—दोनों ही शिक्षित हैं। कम-से-कम बाल-विवाह के दुष्परिणामों से परिचित हैं। वे जानते हैं कि कच्ची उम्र में विवाह कर देने से बच्चे अस्वस्थ रहेंगे तथा विकसित सामाजिक जीवन जीने से वंचित हो जाएँगे। फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि ऊँचे पदों पर काम करने वाले सरकारी व गैर-सरकारी अफसर और जन-प्रतिनिधि भी इस कुप्रथा को बढ़ावा देते हुए दिखाई दे रहे हैं। यह न केवल आने वाली पीढ़ी के स्वास्थ्य पर कुठाराघात है बल्कि उनके भावी दाम्पत्य जीवन में जहर घोल देने के समान है।

एक ऐसी उम्र में जब बालक विवाह का मतलब ही नहीं समझता, यौनाचार के योग्य नहीं होता और उसका आर्थिक आधार तैयार नहीं होता। रोटी-रोजी चलाने की क्षमता का उसमें अभाव होता है, ऐसे में उसके पीछे एक और प्राणी को बाँध देना कहाँ तक उचित है?

## सभी दृष्टियों से घातक है बाल-विवाह

बाल-विवाह सभी दृष्टियों से घातक है। इससे आने वाली पीढ़ी की रक्षा की जानी चाहिए। क्योंकि जबरन एक-दूसरे पर थोप दिए जाने से—लड़का और लड़की—दोनों का भावी पारिवारिक जीवन दूभर और तनावपूर्ण हो जायेगा। वैचारिक रूप से विकसित होने पर जब वे पाएँगे कि उनकी योग्यता, विचारधारा और पसन्द में भारी अन्तर है तो उनका दाम्पत्य-जीवन अत्यन्त कठिन हो उठेगा। असमय, बुढापा और जीवनभर चिड़चिड़ापन, रोग ग्रस्तता के जो उपहार उन्हें मिलेंगे, सो अलग।

आखिर क्या कारण है कि बाल-विवाह को रोकने में न तो इतने कठोर कानून कारगर हो रहे हैं और न पुलिस की कार्यवाही। इसका कारण शायद यह है कि हमारी सामाजिक-चेतना बिल्कुल जंग खा गई है। ऐसे विवाह को हम स्वैच्छिक और व्यक्तिगत काम समझ रहे हैं। किन्तु वास्तव में इसके विरोध हेतु स्वयंसेवी-संस्थाओं को जागरूक होना पड़ेगा। हमें व्यक्तिशः भी अपनी सामाजिक-चेतना जगानी होगी। ऐसे कुकृत्य रोकने के लिए साहस के साथ संघर्ष करना होगा। इससे होने वाली राष्ट्र की हानि को रोकना होगा। गाँव-गाँव और शहर-शहर में सामाजिक संगठन बनाने होंगे जो इस कुप्रथा का विरोध करें, लोगों को रोकें। जब तक हम इन रूढ़ियों से नहीं लड़ेंगे कानून भी असहाय रहेगा। असली बीड़ा तो संगठित होकर स्वयं हमें उठाना है। इसके लिए नई पीढ़ी में चेतना जगायी जानी चाहिए अन्यथा हर वर्ष अबोध बालक-बालिकाओं के गले को कसने वाला बाल-विवाह का फन्दा एक दिन हमारी समाज व्यवस्था को पूरी तरह से पंगु बना देगा।

❑